जापानी लोगों द्वारा लिखित हिन्दी पत्रिका

प्रथम अंक, सितम्बर 1980

जापानी

सम्पादक :

योशिआकि सुज़ुकि

Scanned with CamScanner

जापानी लोगों द्वारा लिखित हिन्दी पत्रिका

ज्वालामुखी

सम्पादक
योशिअकि सुजुकि

तोक्यो, जापान

Scanned with CamScanner

प्रकाशक : योशिअकि सुजुकि
5-9 मात्सुयामा 3-च्योमे, कियोसे-शि,
तोक्यो, जापान

Yoshiaki Suzuki
5-9 Matsuyama 3-Chome,
Kiyose-shi, Tokyo, Japan

प्रथम संस्करण : 1980

सहयोगी राशि ; 10 रुपए (भारत में)
800 येन (जापान में)

नव साहित्य भवन, 1467, वजीर नगर, नई दिल्ली-3 द्वारा
कृष्णा प्रिन्टिंग वर्क्स, नई दिल्ली-5 से मुद्रित

Scanned with CamScanner

अनुक्रम

1.	सम्पादकीय : पत्रिका का उद्देश्य	योशिअकि सुजुकि	
2.	उत्तरी भारत के नगरों में भाषा समस्या पर कुछ टिप्पणियाँ	तोमिओ मिज़ोकामि	1
3.	दक्षिण भारत में सतमाहे की रस्म और गीत	डा० नोरिहिको उचिदा	11
4.	हजारी प्रसाद द्विवेदी का उपन्यास "बाणभट्ट की आत्मकथा" एक विवेचन	यूसुके ओहिरा	27
5.	क्या "रामचरितमानस" जनहितों के लिए लिखा गया था ?	ताकाको सुगानुमा	47
6.	जनवादी लेखक काशीनाथसिंह की कहानियाँ	शिगेओ अराकि	52
7.	जापानी जीवन और इकेबाना	र्‌योको कोज़िमा	62
8.	समीक्षा : विचार गोष्ठी "समकालीन भारतीय साहित्य एवं जनता"	योशिअकि सुजुकि	65
9.	परिशिष्ट		
	(1) जापान में प्रकाशित हिन्दी एवं हिन्दी साहित्य संबंधी निबन्धों की सूची सन् 1970 से 1979 तक		69
	(2) इस अंक के लेखक		73
	(3) विशेष सहयोगी		73

Scanned with CamScanner

सम्पादकीय

पत्रिका का उद्देश्य

आजकल जापान में भारत से संबंधित अध्ययन कर्त्ताओं की संख्या जितनी बढ़ रही है उतनी ही भारतीय भाषाओं की आवश्यकता महसूस की जा रही है। परिणामत: भारतीय भाषाओं को पढ़ने वालों की संख्या भी बढ़ रही है। भारतीय भाषाओं में से हिन्दी पढ़नेवालों की संख्या सर्वाधिक है। पहले जापान में केवल दो विश्वविद्यालयों में ही हिन्दी शिक्षण हो रहा था, अब इनकी संख्या बढ़कर दस-पन्द्रह हो गई है और हिन्दी भाषा एवं हिन्दी साहित्य के अध्ययन के लिए भारत जाने वालों की संख्या भी बढ़ती जा रही है। हिन्दी भाषा एवं हिन्दी साहित्य का अनुसंधान कार्य भी हो रहा है परन्तु उसकी अभिव्यक्ति ज्यादातर जापानी भाषा में की जाती है। (देखिए परिशिष्ट 1) जापानी लोगों को हिन्दी अथवा हिन्दी साहित्य का परिचय देने के लिए निबंध लिखना एवं कहानियों का अनुवाद करना एक महत्वपूर्ण कार्य है। परन्तु अनुसंधान के निष्कर्ष को जापानी भाषा में लिखने से कोई लाभ होगा ? मैं लिख चुका हूँ कि जापान में भारत संबंधी अनुसंधान कर्त्ताओं की संख्या बढ़ रही है। परन्तु फिर भी यह संख्या पर्याप्त नहीं है। इसीलिए अध्ययन का क्षेत्र भी सीमित है। ऐसी परिस्थिति में जापानी भाषा में शोध निबंध लिखने से क्या लाभ होगा ? अगर अपने अध्ययन को हिन्दी में लिख कर भारत के लोगों के सामने पेश किया जाए तो व्यापक तौर से सुझाव भी मिल सकेंगे और हिन्दी के माध्यम से जापानी साहित्य का परिचय जापानी साहित्य का अनुवाद, जापानी साहित्य और हिन्दी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन, जापानी सस्कृति का परिचय आदि करने से भारत के लोगों को भी इस का लाभ मिलेगा। इसी आशय से इस पत्रिका का श्रीगणेश किया जा रहा है। इस के लिए मैंने जापानी हिन्दी प्रेमियों से लेख लिखने का अनुरोध किया था। इस अंक के लेखकों से तथा अन्य लोगों से मुझे उपयोगी सुझाव मिले हैं।

प्रस्तुत पत्रिका जापानी लोगों द्वारा लिखित प्रथम निबंध संग्रह है। इस अंक के लेखक साधारण हिन्दी प्रेमी से लेकर भाषा विज्ञान के विशेषज्ञों तक हैं। इस अंक के लेखक व्यापक तौर पर पाठकों के सुझावों का स्वागत करते हैं।

दो शब्द पत्रिका के नामकरण के बारे में भी लिखना आवश्यक समझता हूँ। मैंने इस पत्रिका को "ज्वालामुखी" नाम दिया है। हमारा देश ज्वालामुखी का देश है। हमारे देश का प्रतीक फुजि पर्वत भी एक ज्वालामुखी है। फुजि पर्वत भव्यता का स्वरूप है। परन्तु मैंने इस पत्रिका को सुन्दर बनाने के लिए यह नाम नहीं दिया। मैंने ज्वालामुखी नाम इसलिए दिया कि सक्रिय ज्वालामुखी की तरह हम भी सदैव क्रियाशील रहें। यह पत्रिका किसी संस्थान या गुट से जुड़ी हुई नहीं है पूरी तौर पर स्वतंत्र है। इसलिए जो लोग हिन्दी में अपने विचार प्रकट करना चाहते हैं उनका इसमें स्वागत है। ऐसे व्यक्तियों के लिए इस पत्रिका का दरवाजा हमेशा खुला है और खुला रहेगा और विश्व के सभी पाठकों से उन के विचार सुझाव तथा प्रतिक्रियायें आमंत्रित हैं।

Scanned with CamScanner

इस पत्रिका को व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण मासिक, त्रैमासिक अथवा अर्द्ध वार्षिक बनाना सम्भव नहीं है, अतएव पत्रिका के प्रेमियों को वार्षिक रूप से ही संतोष करना होगा।

मैं जापानी हिन्दी प्रेमियों से अगले अंक के लिए भी निबंध लिखने का अनुरोध करता हूँ। लेख निम्नलिखित विषयों पर होंगे।

1. हिन्दी भाषा एवं हिन्दी साहित्य संबंधी शोध
2. हिन्दी भाषा एवं जापानी भाषा का तुलनात्मक अध्ययन
3. भारतीय साहित्य और जापानी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
4. जापानी सस्कृति का परिचय
5. जापानी साहित्य का हिन्दी अनुवाद
6. हिन्दी निबंध, कहानी, कविता, आदि।

लेख भेजने की अंतिम तिथि हर साल अप्रेल के अंत तक है और अगला अंक अगस्त अथवा सितम्बर, 1981 में प्रकाशित किया जाएगा।

इस पत्रिका के प्रकाशन की योजना बनाने में काफी कठिनाइयाँ आईं परन्तु उन को हल करने के लिए मुझे कई व्यक्तियों से सहायता प्राप्त हुई। उन सभी के नामों का उल्लेख करना सम्भव नहीं है। उनके प्रति मैं हृदय से धन्यवाद व्यक्त करता हूँ और जिन लोगों ने मुझे सहयोग तथा प्रेरणा दी, उन लोगों के लिए इस पत्रिका को आगे बढ़ाना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

धन्यवाद

सम्पादक
योशिअकि सुजुकि

26-8-1980
रक्षाबंधन का दिन
नई दिल्ली

Scanned with CamScanner

उत्तरी भारत के नगरों में भाषा समस्या पर कुछ टिप्पणियाँ

तोमिओ मिज़ोकामि

[प्राय: भारत की भाषा-समस्याएँ उसकी बहुभाषिकता और भारतीय भाषाओं में द्वन्द्व का स्मरण कराती हैं। दक्षिण भारत में गड़बड़ फैलाने वाले हिन्दी-विरोधी आन्दोलनों के विषय में हम सब जानते हैं। परन्तु हिन्दी की भी अपनी निजी समस्याएँ हैं जो, यद्यपि भाषा-वैज्ञानिक तथा सामाजिक दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं अभाषा वैज्ञानिकों का ध्यान उतना आकर्षित नहीं करतीं जितना भाषाओं की बहुलता। भाषागत विविधता हिन्दी में भी है। हिन्दी-विरोधी आंदोलन तथा 'अंग्रेजी हटाओ' अभियान जैसे विषय प्राय: राजनीतिक हैं।

मेरा यह लेख उत्तर भारत के नगरों की द्विभाषिकता अथवा बहुभाषिकता से संबद्ध है। अनिवार्यत: हिन्दी की समस्याएँ उससे जुड़ी हुई हैं और उसमें विभिन्न सांस्कृतिक स्तरों के अनुरूप कुछ सामाजिक विश्लेषणों पर पहुँचने का प्रयास भी किया गया है।]

जब हम उत्तरी भारत के बुद्धिजीवियों से हिन्दी में बात करते हैं तो प्राय: हम इस प्रकार प्रशंसित होते हैं—"आपकी हिन्दी मुझसे काफी अच्छी है।' अथवा "आप मुझसे अच्छी हिन्दी जानते हैं।" मनुष्य का स्वभाव है कि यदि कोई विदेशी किसी व्यक्ति की मूल भाषा में दक्ष है तो वह व्यक्ति उस विदेशी की प्रशंसा करने में संकोच नहीं करेगा। परन्तु, उदाहरण के लिये, जर्मन बुद्धिजीवी किसी विदेशी की प्रशंसा करते हुए यह कभी नहीं कहेंगे—"Ihr Deutsch ist besser als mein Deutsch." या "Sie sprechen Deutsch besser als ich." इसी प्रकार फ्रांसीसी बुद्धिजीवी भी कभी किसी विदेशी को यह नहीं कहेंगे—"Vous parlez francais mieux que moi."कोई जापानी बुद्धिजीवी भी किसी विदेशी को, चाहे वह विदेशी जापानी भाषा में कितना ही प्रवीण क्यों न हो, यह नहीं कहेगा—"Anata wa watashi yorimo nihongo ga ojozu desune."

भारत के अन्य भागों में भी, जैसे बंगाल में, बुद्धिजीवी किसी अ-बंगाली से कभी नहीं कहेंगे कि "आपनार बंगला आमार चेये भालो।" हालाँकि, यदि विदेशी बंगला भाषा बोलता है तो इससे बंगाली लोग बहुत प्रसन्न होंगे। यदि अ-तमिल भाषी तमिल-ध्वनियों का शुद्ध उच्चारण नहीं करते तो तमिल भाषी लोग इससे प्रसन्न नहीं होते[1]। तब केवल हिन्दी-भाषी "आप मुझसे अच्छी हिन्दी जानते हैं।" सरीखा वाक्य क्यों बोलते हैं? इसका अभिप्राय क्या यह है कि वे केवल हमारी झूठी प्रशंसा कर रहे हैं? मैं मानता हूँ कि उत्तर भारतीय खुले दिल के हैं, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि उत्तर भारत के हिन्दी-भाषी संसार के श्रेष्ठतम झूठे प्रशंसक हैं। यह देखा जा सकता है कि हिन्दी भाषा का एक विशेष स्तर या शैली (साहित्यिक भाषा) उन लोगों के लिये भी उतनी ही 'विदेशी' अथवा प्राय: उतनी ही अबूझ

Scanned with CamScanner

है जितनी कि किसी हिन्दी सीखने वाले के लिये। अत: उनका विदेशियों की प्रशंसा करना अनिवार्यत: शत प्रतिशत केवल प्रशंसा-भाव ही नहीं होता अपितु इसमें कुछ सत्य भी होता है। संस्कृतनिष्ठ शब्दावली से बहुत कम लोग परिचित हैं [2])।

हिन्दी के बोलचाल के रूप को प्राय: 'हिन्दुस्तानी' के नाम से पुकारा जाता है। इस नाम का प्रचलन अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में हुआ था। इस भाषा-रूप की कई परिभाषाएँ दी जा सकती हैं, किन्तु प्राय: इस बात पर सहमति है कि यह उत्तरी भारत में हिन्दुओं और मुसलमानों के द्वारा समान रूप से बोली जाने वाली भाषा रही है। उच्च हिन्दी तथा उर्दू हिन्दुस्तानी की साहित्यक अथवा सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के दो भिन्न माध्यम मात्र हैं। साहित्यिक हिन्दी (उच्च हिन्दी) की अधिकांश शब्दावली संस्कृत से है तो उर्दू की अरबी-फारसी से। बोलचाल के स्तर पर दोनों भाषाओं में बहुत कम अन्तर है। सुनीति कुमार चटर्जी ने हिन्दुस्तानी (उनको वर्तनी में 'हिन्दुस्थानी') की परिभाषा देते हुए उसे 'हर रोज़ के प्रत्यक्ष जीवन के व्यवहार की हिन्दी जो अत्यन्त संस्कृतपूर्ण नहीं है' कहा है[3])।

चूंकि हिन्दुस्तानी के विकास एवं प्रचार में मुसलमानों की देन अधिक रही है, इसकी पूर्ण शब्दावली में अरबी-फारसी की ओर झुकाव स्वाभाविक है। कह सकते हैं कि उच्च हिन्दी इसके शुद्धिवादियों (स्वभावतया हिन्दू ही) की कृत्रिम उपज है जिन्होंने संस्कृत के बहुसंख्यक शब्दों को अपना लिया है। यही कारण है कि उच्च हिन्दी बोलचाल के हिन्दी-रूप से काफी भिन्न है।

यद्यपि हिन्दी-उर्दू की समस्या को केवल धार्मिक-साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से देखना उचित नहीं होगा (उदाहरण के लिये कई हिन्दू विशेषतया कायस्थ उर्दू में सुशिक्षित हैं।), किन्तु प्राय: यह एक ऐसा तथ्य है जिसे नकारा नहीं जा सकता कि हिन्दी हिन्दुओं की तथा उर्दू मुसलमानों की सांस्कृतिक भाषा मानी जाती है। हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक झगड़ों से बचने के लिये तथा उसके अखिल भारतीय स्तर पर प्रचलन के कारण महात्मा गांधी ने हिन्दुस्तान का एक समान भाषा के रूप में समर्थन किया था। परन्तु हिन्दुस्तानी उच्च स्तर की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का माध्यम न बन सकी, क्योंकि वह केवल आधारभूत सम्प्रेषण की एक भाषा थी। अत: सांस्कृतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उच्च हिन्दी और उर्दू द्वारा भिन्न-भिन्न मार्गों का अपनाया जाना एक अनिवार्य प्रक्रिया थी। इसके अतिरिक्त भारत-विभाजन (1947) ने भी हिन्दी-उर्दू के विवाद पर एक निर्णयात्मक प्रभाव डाला, क्योंकि उसके बाद अब भारत ने राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को तथा पाकिस्तान ने उर्दू को स्वीकार कर लिया। भारत में अब भी उर्दू एक प्रयोजनीय भाषा है, किन्तु पाकिस्तान में हिन्दी का प्रयोजन नहीं है। इस मोड़ ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है कि भारत और पाकिस्तान दोनों देशों में 'हिन्दुस्तानी' शब्द अप्रचलित होने लगा है। "मैं घर जा रहा हूँ।" जैसा हिन्दुस्तानी का एक साधारण वाक्य भी हिन्दुओं द्वारा हिन्दी का तथा भारतीय मुसलमानों और पाकिस्तानियों द्वारा उर्दू का वाक्य कहा जाता है।

अब, जबकि हिन्दी (देवनागरी में लिखित) को भारतीय संविधान द्वारा स्वीकार किया गया है, साहित्यिक हिन्दी क्रमश: संस्कृतनिष्ठा की ओर बढ़ रही है। यह शिक्षा तथा जन-सम्प्रेषण का माध्यम है। किन्तु जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, अधिकांश हिन्दी-भाषी अब भी उस साहित्यिक हिन्दी में पूर्ण दक्ष नहीं हैं। इससे ज्ञात होता है कि भाषा-शिक्षण कितना समय-साध्य है। संस्कृतनिष्ठा वाला

Scanned with CamScanner

अतिवादी प्रचार भाषा की प्रकृति को हानि ही पहुँचाता है। भाषा के बोलचाल वाले तथा लिखित रूप के अन्तर को मिटाने की दिशा में सदा ही सक्रिय कदम उठाने चाहिए।

शुद्ध हिन्दी प्रायः बोलने में उपहासस्पद मानी जाती है तथा हिन्दी को सरल बनाने के सुझाव अधिकतर उन वक्ताओं द्वारा दिए जाते हैं जो अपनी ओर से इस दिशा में कोई प्रयास नहीं करते।

प्रो० वारान्निकोव रूस के प्रख्यात हिन्दी-विद्वान ने हिन्दी को सरल बनाने के इस विचार की आलोचना करते हुए निरन्तर प्रयोग द्वारा उच्च हिन्दी से परिचित होने का सुझाव दिया है।[4] हिन्दी के विदेशी छात्रों को यह समझने में समय लगेगा कि 'परिचय' 'प्रश्न' 'सुविधा' आदि जैसे मूलभूत शब्द भी दैनिक बोलचाल में यदाकदा ही प्रयुक्त होते हैं। अधिकांश विदेशी व्याकरण के माध्यम से हिन्दी सीखते हैं। किसी भी विदेशी भाषा को सीखने का यह सुगम मार्ग है। अतः वे बोलचाल की अपेक्षा लिखित भाषा से अधिक परिचित होते हैं। तब, यह अपरिहार्य है कि आरम्भ में उनकी हिन्दी पुस्तकीय हो। चैकोस्लोवाकियन भारतीय भाषा-विद्वान प्रो० ओडोलेन स्मेयकल ने कहा है कि वे चैकोस्लोवाकिया में पढ़ाई गई शुद्ध संस्कृतनिष्ठ भाषा में अधिक पारंगत हैं।[5] मूल हिन्दी-भाषियों को हिन्दी सीखनेवाले उत्साही विदेशी छात्रों के साथ खिचड़ी भाषा की अपेक्षा उच्च स्तर की हिन्दी में अधिक निष्ठा के साथ बातचीत करनी चाहिए।

क्योंकि भाषा संस्कृति के साथ गहराई से संबद्ध होती है अतः भाषा की व्यक्तिगत शैली स्वयं व्यक्ति की ही संस्कृति की द्योतक होती है। इसलिए जहाँ सांस्कृतिक स्थिति का प्रश्न हो वहाँ शुद्ध हिन्दी की, चाहे औपचारिक ही क्यों न हो, आवश्यकता होती है। मैं दिल्ली में एक भारतीय परिवार के यहाँ गया। बातचीत के बीच मुझे शौचालय जाने की आवश्यकता हुई। मैंने उच्चतर माध्यमिक पाठशाला में पढ़ने वाले उस परिवार के एक लड़के से कहा—"मैं लघुशंका करना चाहता हूँ।" मुझे शौचालय की ओर ले जाने के स्थान पर वह मेरे लिये पानी-भरा एक गिलास ले आया, अर्थात हिन्दी माध्यम वाले स्कूल में पढ़ते हुए भी उसे 'लघुशंका' शब्द नहीं मालूम था। इससे ज्ञात होता है कि शिक्षण संस्थाओं में परिष्कृत भाषा पूरी तरह से पढ़ाने का अभाव है। एक और अनुभव को भी उद्धृत किया जाय। अपने एक पड़ोसी का टेलीफोन प्रयोग में लाने के पश्चात् मैंने फोन करने के दाम चुकाने चाहे, परन्तु पड़ोसी ने इसे लेना अस्वीकार कर दिया। फिर भी मैंने देने चाहे। मैं ऐसी सरल हिन्दी में अपना कथन सुविधा से दोहरा सकता था—"लीजिये न,.....अच्छा नहीं लगता, लीजिए न..." किन्तु केवल एक परिवर्तन लाने के लिए और अपने सांस्कृतिक स्तर के उपयुक्त कुछ प्रभावशाली अभिव्यक्ति लाने के लिये मैंने कहा—"मुझे अपनी सभ्यता का पालन करने दीजिए।" श्रोता मेरी इस हिन्दी पर आश्चर्य-चकित हो गए।

उच्च स्तर की हिन्दी के प्रयोग में केवल निम्न स्तर की हिन्दी ही एक बाधा नहीं है। उच्च स्तर की हिन्दी के प्रयोग में सामान्य हिन्दी सहित प्रायः अंग्रेजी भी बाधक बनती है। मैं अंग्रेजी पर अगले खण्ड में विचार करूँगा।

यह एक गलत धारणा है कि सभी 'शिक्षित' भारतीय अंग्रेजी जानते हैं। हमें 'शिक्षित' शब्द को पश्चिमी अर्थों तक सीमित नहीं करना चाहिए। यद्यपि अंग्रेजी शिक्षा पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से भारत

Scanned with CamScanner

में आधुनिकीकरण लाई, फिर भी इस देश में पण्डितों द्वारा उत्तराधिकार में प्राप्त और विकसित वेद तथा वेदान्तों की एक पारम्परिक शिक्षा-पद्धति भी रही है। हम कह सकते हैं कि भारतीय सन्दर्भ में इस प्रकार के पण्डित भी सुशिक्षित हैं। यह आवश्यक नहीं कि उन्हें आधुनिक पश्चिमी शिक्षा प्राप्त हो। उनकी ज्ञान-निधि विदेशी भारतीय भाषा-विद्वानों के लिये अत्यन्त सहायक है। साथ ही हमें मौलवियों जैसे पारम्परिक इस्लामी शिक्षित व्यक्तियों के वर्ग को भी इसमें जोड़ना होगा। हमें विशिष्ट उद्देश्य की दृष्टि से शिक्षा के प्रकार को समझना होगा। इसके लिये सामान्य-सा उदाहरण दिया जायगा—भारत में कई श्रेष्ठ संगीतकार हैं किन्तु उनमें से कई व्यक्ति Beethoven (विख्यात जर्मन संगीतज्ञ) का नाम भी नहीं जानते होंगे। यद्यपि वे लोग पाश्चात्य संगीत से अनभिज्ञ हैं, फिर भी वे श्रेष्ठ संगीतकार तो हैं ही। 'शिक्षित' का अर्थ वे लोग नहीं जो अंग्रेजी पढ़े-लिखे हों। पण्डितों की अभिव्यक्ति में संस्कृत तथा उच्च हिन्दी की महत्त्वपूर्ण भूमिका है तो अरबी, फारसी और उर्दू इस्लामी अभिव्यक्ति के माध्यम हैं। भारतीय लोग इस प्रकार की शिक्षा अंग्रेजी के ज्ञान के बिना प्राप्त कर सकते हैं, यद्यपि विदेशी विद्वानों के लिये असंभव है। अतः भारत में 'शिक्षित' होने के लिए अंग्रेजी ही एकमात्र कसौटी नहीं है। उत्तरी भारत के नगरों के सांस्कृतिक और सामाजिक स्तरीकरण के सन्दर्भ में भाषाओं के विभाजन पर विचार करते समय यह तथ्य बहुत महत्त्वपूर्ण है। उदाहरण के लिये गमपर्ज[6] ने उचित ही संकेत किया है कि जन-साधारण द्वारा बोली जानेवाली बोली तथा उसकी तुलना में अल्पसंख्यक शिक्षितों द्वारा प्रयुक्त साहित्यिक मुहावरे में सदा ही अन्तर रहा है, किन्तु हमारे मतानुसार शिक्षितों के बीच भी आपस में बहुत बड़ा अन्तर होता है। उनके द्वारा प्राप्त शिक्षा के प्रकार तथा स्तर को भी ध्यान में रखना चाहिए। हिन्दी-भाषी क्षेत्र की एक विशेषता है कि शिक्षित' का अभिप्राय आनिवार्यतः उन लोगों से नहीं जो हिन्दी अच्छी तरह लिखना-पढ़ना जानते हैं। अन्य क्षेत्रों में ऐसा नहीं है। उदाहरण के लिये बंगाल को लीजिए, यह पूर्ण विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि वहाँ शिक्षित वर्ग अंग्रेजी को चाहे कितना पसंद करे, बंगला भाषा में पूर्ण रूपेण दक्ष होता है। हिन्दी-भाषी क्षेत्र में ऐसे अनेक बुद्धिजीवी हैं जो उच्च स्तर की हिन्दी नहीं जानते। यहाँ तक कि कुछ लोग ऐसा कहने में भी संकोच नहीं करते कि मुझे हिन्दी नहीं आती। स्वतंत्रता-प्राप्ति के लगभग तीन दशकों के बाद भी कुछ शुद्धिवादियों के उत्साही आन्दोलनों के बावजूद उत्तरी भारत में अब भी अधिकांश लोग अंग्रेजी को उच्च सम्मान की भाषा मानते हैं। पण्डितों और मौलवियों का सम्मान केवल धर्म तथा विद्या के क्षेत्रों में सीमित होकर रह गया है। सामाजिक सम्मान तो प्रायः उन दूसरे सम्भ्रान्तों (Elites) के हाथ में है जिनका शिक्षण अंग्रेजी द्वारा हुआ है। स्वभावतया इस प्रवृत्ति का उद्गम इस तथ्य से खोजा जा सकता है कि ब्रिटिश साम्राज्य के लगभग दो सौ वर्षों में अंग्रेजी प्रशासन तथा उच्च शिक्षा की भाषा थी। अतः हिन्दी की अपेक्षा अंग्रेजी का और स्थानीय बोलियों की अपेक्षा हिन्दी का उच्च सम्मान है। किन्तु यह जानकर आश्चर्य होता है कि कुछेक अंग्रेजी-शिक्षितों द्वारा इस बाद वाले तथ्य (यानी, हिन्दी की प्रतिष्ठा उसकी स्थानीय बोलियों से बड़ी है।) की भी उपेक्षा की जाती है। उत्तरी भारत के नगरों (विशेषतया दिल्ली) में अंग्रेजी कितनी प्रभुत्वशाली है और नगरवासियों के अवचेतन में कितनी गहराई से बसी हुई है, इसे सरलता से मात्र कुछ सामान्य उदाहरणों (कुछ तो अपने अनुभवों पर आधारित) द्वारा जाना जा सकता है :—

उदाहरण (1) : दिल्ली विश्वविद्यालय के कुलपति तथा प्रो० कुलपति के विषय में मुझे बताते हुए हिन्दी के एक प्रोफ़ेसर ने कहा—"दोनों अच्छी हिन्दी बोलते हैं।' यह पहले ही विदित था कि वे दोनों हिन्दी

Scanned with CamScanner

प्रदेश से आए हुए हैं, अतः इस प्रसंग में किन्हीं अन्य भारतीय भाषाओं की चर्चा नहीं थी तब भी मेरे आदरणीय प्रोफ़ेसर को यह बताने के लिये कि वे केवल अंग्रेजी-शिक्षित ही नहीं, अपितु अच्छी हिन्दी भी जानते हैं, 'हिन्दी' शब्द जोड़ना पड़ा था। मेरे एक भारतीय मित्र ने जो दिल्ली विश्वविद्यालय में हिन्दी के विद्यार्थी थे, एक दिन मुझे यह कहते हुए एक भाषण-प्रतियोगिता में आमन्त्रित किया था कि "आज हिन्दी की भाषण प्रतियोगिता है, चलो मेरे साथ।" वे भी 'हिन्दी' का उल्लेख करना नहीं भूले, यद्यपि यह स्पष्ट था कि वहाँ भाषण-प्रतियोगिता हिन्दी के अतिरिक्त किसी दूसरी भाषा में नहीं थी। जापान में जब हम किसी को एक अच्छे वक्ता अथवा अच्छे लेखक के रूप में उल्लेख करते हैं तो हम केवल इतना कहते हैं—"Ano hito wa hanashijōzu desu." अथवा "Ano hito wa bunshō ga umai." और अक्सर 'जापानी' का उल्लेख नहीं करते, क्योंकि यह स्वतः सिद्ध होता है कि वह जापानी में ही बोलता अथवा लिखता है। इसके अतिरिक्त हम अपनी भाषा को 'जापानी' नहीं, अपितु 'कोकुगो' (राष्ट्रीय भाषा) कहने के आदी हैं। हिन्दी के लिये यह विडम्बना है कि आपको हर स्थान पर 'हिन्दी' शब्द प्रयुक्त करना पड़ता है। आकाशवाणी से नित्य सुनाई देता है—"हिन्दी में समाचार सुनिये।"—जबकि उद्घोषक हिन्दी में ही बोल रहा होता है। तार देने का नया फॉर्म केवल हिन्दी में छपा है, जोकि अपने आप में एक बड़ा परिवर्तन है, किन्तु यह और भी मनोरंजक है कि खिड़की पर लगी तख्ती पर लिखा है: "तार देवनागरी में भी दिये जा सकते हैं" (रेखा प्रस्तुत लेखक की) और मैंने देखा कि वहाँ खड़े अधिकांश लोग हिन्दी-फार्म पर अंग्रेजी-वाक्य लिख रहे थे। संस्कार से छुटकारा पाना कितना कठिन है।

उदाहरण (2): यह एक मनोरंजक किन्तु खेदजनक उदाहरण है कि एक अंग्रेजी वक्ता किस प्रकार इस भाषा से प्रदूषित है तथा एक पत्रकार, जोकि समान रूप से अंग्रेजी-शिक्षित है, किस प्रकार निष्क्रिय भाव से अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। 'हवाई कम्पनी की एक सहकारिणी' शीर्षक एक लेख[7] में एअर-इण्डिया के नई दिल्ली दफ़्तर में काम करने वाली बारह युवा यातायात-सहायिकाओं में से एक का परिचय उसमें दिया गया था। कुछ प्रश्नों के उत्तर देने के बाद वह कहती है, "·····और पहली बार नई दिल्ली आने वाले अथवा लंदन के लिये अपनी पहली यात्रा करने वाले कुछ सिख यात्री भी हैं। वे हवाई-यात्रा के बारे में बिल्कुल कुछ भी नहीं जानते और अंग्रेजी बहुत कम जानते हैं। मैं ऐसे आदमियों के साथ पंजाबी में बातचीत करती हूँ और उनकी चिन्ताओं और भय को दूर करने की कोशिश करती हूँ।" पत्रकारिता के दृष्टिकोण के लिये यह प्रथम पाठ (अर्थात सामान्य बोध) होना चाहिए कि यदि एक कुत्ता किसी व्यक्ति का काटता है तो यह कोई समाचार नहीं है किन्तु यदि एक व्यक्ति किसी कुत्ते को काटता है तो यह समाचार है। यहाँ एक पंजाबी लड़की का पंजाबी लोगों के साथ "उनकी चिन्ताओं और भय को दूर करने के लिये" पंजाबी में बातचीत करना एक समाचार था। मुझे आश्चर्य है कि इससे सिख भाई अपमानित अनुभव क्यों नहीं करते।

उदाहरण (3): हरियाणा प्रान्त के (उस वक्त के) मुख्य मंत्री, श्री बनारसी दास, नई दिल्ली में एक सभा में उपस्थित थे। अपने प्रति सम्बोधित अंग्रेजी के स्वागत-भाषण को सुनने के बाद उन्होंने हिन्दी में बोलना प्रारम्भ किया, वह भी हिन्दी में बोलने के लिये क्षमा-याचना करने के बाद ही। और उन्होंने कहा—"दुर्भाग्य है कि अपने ही देश में हिन्दी में बोलने के लिये क्षमा माँगनी पड़ रही है।"[8] इस हिन्दी-प्रेमी मंत्री के उदाहरण से पता चलता है कि हिन्दी उच्च राजनीतिक स्तरों की भाषा नहीं है। अंग्रेजी

Scanned with CamScanner

के इस प्रकार के उन्मुक्त प्रयोग से अवांछित परिणाम निकलते हैं। सर्वप्रथम, हिन्दी पढ़नेवाले विदेशी छात्र यथेष्ठ हतोत्साहित हो जाते हैं। गमपर्ज़ ने भी लिखा है[9] कि जो विदेशी मूल निवासियों के साथ हिन्दी में बातचीत करना चाहते हैं उन्हें बहुत कम अवसर मिलते हैं। आगे वे कहते हैं कि वे (हिन्दी-भाषी) उसे (विदेशी) अपने अंत: वर्गीय सम्बन्धों की आत्मीयता से बाहर रखने के लिये भाषागत सीमा का लाभ उठा रहे हों।[10] यहाँ एक अन्य दृष्टिकोण की ओर भी ध्यान देना चाहिए : कभी-कभी मूल निवासी वक्ता अपने साथियों के बीच अंग्रेजी में अपनी दक्षता का प्रदर्शन करना चाहता है, अत: यह दिखावे की भावना विदेशी का 'इस्तेमाल' करती है। प्रो० कात्सुरो कोगा को बहुत धक्का लगा था जब उ होंने प्रथम बार एक भारतीय को हिन्दी में संबोधित किया ओर उसका जवाब अंग्रेजी में पाया।[11] वे इस बात पर खेद प्रकट करते हैं कि अंग्रेजी भारत की प्रधान भाषा है तथा भारतीय भाषाएँ गौण भाषाएँ हैं। जनवरी, 1975 में नागपुर में हुए विश्व हिन्दी सम्मेलन में प्रो० क्यूया दोई ने भारतीय दूतावासों में अंग्रेजी के बोलबाले की निंदा की थी।[12] अनेक विदेशी प्रतिनिधियों ने भारत के सभी स्तरों पर हिन्दी-प्रयोग की असहमति की शिकायत की थी। भारतीयों की ओर से इस पर प्रथम प्रतिक्रिया संसद में सुनाई दी। एक सदस्य ने कहा कि हाल ही में नागपुर विश्व-हिन्दी सम्मेलन में विदेशी प्रतिनिधियों के मुँह से यह सुनना कि स्वयं सम्पूर्ण भारत में ही सामान्यत: हिन्दी नहीं बोली जाती, लज्जा की बात है।[13]

क्योंकि अंग्रेजी प्रतिष्ठा (prestige) के साथ घनिष्ठता से जुड़ी हुई है, लोगों के लिए समाज में उच्च स्तर पाने की चाह या ऐसी मनोवृति पर नियंत्रण पाना बहुत कठिन है। कभी-कभी हमें दो व्यक्ति आपस में भिन्न भाषाओं में झगड़ते हुए दिखाई देते हैं—एक हिन्दी में और दूसरा अंग्रेजी में। अंग्रेजी वक्ता हिन्दी वक्ता से प्राय: अच्छे वेश में होता है, किन्तु यह झगड़ा हमारे लिए बड़ा अद्‌भुत लगता है।

हिन्दी भाषी अपनी भाषा में सायास या अनायास ही अंग्रेजी के कई शब्द मिश्रित कर लेते हैं। यद्यपि सीमा के अन्दर यह स्वीकार्य है, परन्तु अन्य भाषाओं से आवश्यकता से अधिक शब्द लेने की प्रवृत्ति भाषा की प्रकृति के लिये हानिकारक है। फिर विदेशी छात्रों को कठिनाई हो सकती है। जब मैं हिन्दी पढ़ने लगा था और मेरे दिमाग में हिन्दी के शब्द नहीं आते थे, तब मुझे अंग्रेजी से सहायता लेनी पड़ती थी। तब "मेन (main) चीज़ तो यह है…" जैसी हिन्दी मेरे मुँह से निकलती थी। किन्तु उच्च हिन्दी से परिचित होने के बाद "मुख्य बात तो यह है कि…" जैसी हिन्दी का प्रयोग करना मेरे लिए बहुत आसान हो गया था। परन्तु भारत में काफ़ी समय तक रहने से अंग्रेजी शब्दावली मिश्रित बोलचाल की हिन्दी ने मेरी बोलचाल की हिन्दी को प्रभावित किया। अब मैं अपने घनिष्ठ मित्रों मे यदि स्वाभाविक ढंग से बोलूँ तो "मेन (Main) चीज़ तो यह है…" जैसी हिन्दी मेरे मुँह से निकलेगी। संयोग से यह उच्च हिन्दी से हिन्दी सीखने की आरम्भिक स्थिति में 'प्रत्यावर्तन' है। हिन्दी के विदेशी छात्रों के लिए बोलचाल वाली हिन्दी का वास्तविक रूप हिन्दी शिक्षण की उच्च स्थिति की अपेक्षा इस आरम्भिक स्थिति में पाया जाता है।

अब उत्तरी भारत के नगरों में लोगों की शिक्षा अथवा सांस्कृतिक परिवेश के आधार पर भाषा के विभिन्न रूपों को वर्गीकृत करने का प्रयास किया जायगा। निम्नलिखित वर्गीकरण वक्ताओं के शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक स्तरों के साथ भाषा के सम्बन्ध को स्थूलत : प्रदर्शित करता है। मैंने वक्ताओं को आठ वर्गों में विभक्त किया है। यह वर्गीकरण केवल वक्ताओं की शिक्षा अथवा संस्कृति अथवा भाषा के प्रति

Scanned with CamScanner

उनकी सचेतनता (अथवा अचेतनता) पर आधारित है और उनके सामाजिक स्तर के साथ सर्वदा मेल नहीं खाता। कुछ व्यक्तियों के लिये कई वर्ग एक दूसरे से मिल सकते हैं।

↓ स्थिति वर्ग →	'क'	'का'	'ख'
अपने (समान) वर्ग सहित	हिन्दी	हिन्दी	उर्दू
परिवार अथवा घनिष्ठ मित्रों में (अनौपचारिक)	हिन्दी अथवा स्थानीय बोलियाँ	हिन्दी अथवा स्थानीय बोलियाँ	उर्दू अथवा स्थानीय बोलियाँ
सामान्य वार्तालाप (बाज़ार की बातचीत)	हिन्दी की ओर झुकी हुई हिन्दुस्तानी	हिन्दी की ओर झुकी हुई हिन्दुस्तानी	हिन्दी की ओर झुकी हुई हिन्दुस्तानी
व्यवसाय	हिन्दी	हिन्दी तथा अंग्रेजी	उर्दू
बौद्धिक वार्तालाप	हिन्दी	हिन्दी तथा अंग्रेजी	उर्दू
पढ़ना-लिखना	हिन्दी	हिन्दी तथा अंग्रेजी	उर्दू
'प्रेमचंद अच्छे लेखक हैं' की विशिष्ठ अभिव्यक्ति जो उपर्युक्त वर्गों के अनुकूल है।	"प्रेमचंद ~~अच्छे~~ {अच्छे} लेखक हैं।"	"प्रेमचंद ~~अच्छे~~ {अच्छे} लेखक हैं।"	"प्रेमचंद अच्छे मुसन्निफ़ हैं।"

Scanned with CamScanner

'ख'	'ग'	'घ'	'ङ'	'च'
उर्दू	हिन्दी	अंग्रेजी	हिन्दी	बाज़ारू हिन्दी अथवा स्थानीय बोलियाँ
उर्दू अथवा स्थानीय बोलियाँ	हिन्दी अथवा स्थानीय बोलियाँ	अंग्रेजी	हिन्दी अथवा स्थानीय बोलियाँ	स्थानीय बोलियाँ
उर्दू की ओर झुकी हुई हिन्दुस्तानी	हिन्दुस्तानी	हिन्दुस्तानी	बाज़ारू हिन्दी	बाज़ारू हिन्दी
उर्दू तथा अंग्रेजी	हिन्दी तथा अंग्रेजी	अंग्रेजी	हिन्दी	हिन्दी
उर्दू तथा अंग्रेजी	हिन्दी तथा अंग्रेजी	अंग्रजी	हिन्दी	—
उर्दू तथा अंग्रेजी	हिन्दी तथा अंग्रेजी	अंग्रेजी	हिन्दी	—
"प्रेमचंद अच्छे मुसन्निफ़ हैं।"	"प्रेमचंद अच्छा राईटर है।"	"प्रेमचंद इज़ ए गुड राईटर।"	"प्रेमचंद अच्छा लिखता है।"	—

वर्ग 'क'...हिन्दी-विद्वान अथवा अध्यापक, हिन्दी अथवा संस्कृत के स्नातक और स्नातकोत्तर छात्र, हिन्दी लेखक, कवि, आलोचक, हिन्दी-पत्रकार, आर्य समाज के नेता, और सनातन हिन्दू धर्म के साथ सम्बन्धित पण्डित इत्यादि इसी वर्ग में आते हैं। ये उच्च हिन्दी में बहुत दक्ष हैं। गमपर्ज़[4] के अनुकूल हम इस वर्ग को 'सम्भ्रान्त हिन्दी वक्ता' कह सकते हैं। जब ये ही 'सम्भ्रान्त हिन्दी वक्ता' शुद्ध हिन्दी के संकुचित प्रचारक बन जाते हैं तो इन्हें 'हिन्दी वाले' कहा जाता है जोकि एक अपमानजनक शब्द है। इस प्रकार के शब्द की मौजदगी ही हिन्दी क्षेत्र की अन्यतम विशेषता है।

Scanned with CamScanner

वर्ग 'का'.....उन लोगों का है जो अंग्रेजी में उच्च शिक्षित होने के साथ-साथ हिन्दी में भी समान रूप से अच्छे हैं। ये वास्तविक द्विभाषा-भाषी हैं। ये स्थिति के अनुरूप एक भाषा को दूसरी भाषा में सहजता से बदल सकते हैं। ये संकीर्णतावादी नहीं होते। ये भारतीय बुद्धि का प्रतिनिधित्व करते हैं, किन्तु आर्थिक दृष्टि से उनमें से अधिकांश मध्य वर्ग या उच्च-मध्य वर्ग में आते हैं। 'क' तथा 'का' वर्ग ही ऐसे हैं जो किसी विदेशी से यह नहीं कहेंगे कि "आप मुझसे अच्छी हिन्दी जानते हैं।" और जिनसे विदेशी लोग अच्छी हिन्दी सीख सकते हैं।

वर्ग 'ख'.....वर्ग 'क' का ही यह उर्दू संस्करण है और वर्ग 'खा', वर्ग 'का' का। शिक्षित मुसलमान और कुछ शिक्षित हिन्दू (जैसे कायस्थ लोग) जो उर्दू में शिक्षित हैं, 'ख' वर्ग अथवा 'खा' वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। उनकी संख्या कम होती जा रही है।

वर्ग 'ग'.....यह एक ऐसा वर्ग है जो भाषा-नीति के प्रति उदार तथा उदासीन है। शिक्षित मध्यवर्ग का अधिकांश इसी वर्ग में आता है। ये वर्ग 'का' अथवा वर्ग 'खा' के निम्नतर स्तर के लोग हैं। 'क' 'का' 'ख' और 'खा' वर्ग अपने भाषा-प्रयोग के प्रति 'सजग' हैं किन्तु 'ग' वर्ग उसके प्रति 'सुप्त' है। यद्यपि ये लोग भी द्विभाषी हैं, किन्तु स्थिति के अनुरूप एक भाषा को दूसरी भाषा में नहीं बदल सकते। इन्हें 'भाषा के अवसरवादी' कह सकते हैं।

वर्ग 'घ'.....उन लोगों का वर्ग है जो 'शरीर से भारतीय और मन से अंग्रेज' हैं। ये अंग्रेजों के समान ही धाराप्रवाह अंग्रेजी बोलते हैं। इन्होंने पब्लिक स्कूलों में शिक्षा पाई है। अंग्रेजी को भारत में बनाए रखने के ये प्रबल समर्थक हैं। यद्यपि ये हिन्दी समझ लेते हैं पर 'कामचलाऊ हिन्दी' ही पर्याप्त समझते हैं। ये लोग अधिकांशतः सरकारी प्रशासक, बड़े व्यापारी, डाक्टर, वकील, वैज्ञानिक, पत्रकार और विश्वविद्यालयों के वे प्रोफ़ेसर हैं जिनके विषय विज्ञान अथवा सामाजिक विज्ञान से संबंधित हैं। ये सम्भ्रान्त अवश्य हैं किन्तु भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व नहीं करते।

वर्ग 'ग' और 'घ' ही ऐसे हैं जो 'अंग्रेजीयत' से छुटकारा न पाने के कारण हिन्दी के विदेशी छात्रों को (अंग्रेजी भाषी भी शामिल हैं) हतोत्साहित करते हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो अंग्रेजी को अपनी मातृभाषा मानते हैं—जैसा कि एंग्लो-इण्डियन लोगों में पाया जाता है, जो सुशिक्षित' भी नहीं, 'सम्भ्रान्त' भी नहीं, केवल अंग्रेजी में सोचते और जीते हैं, वे निम्नस्तर के 'घ' हैं।

वर्ग 'ङ'.....यह अर्द्ध-शिक्षितों का वर्ग है। ये लोग सरकारी स्कूलों में हिन्दी माध्यम से शिक्षा पाते हैं। ये न तो साहित्यिक हिन्दी में प्रवीण होते हैं और न ही अंग्रेजी में। किन्तु उल्लेखनीय बात यह है कि वर्ग 'घ' की अपेक्षा वर्ग 'ङ' के लोग ही विदेशी छात्रों के लिये हिन्दी सीखने में अधिक सहायक हैं। एक व्यक्ति, जिसने प्राईमरी स्कूल के केवल तीन वर्षों तक पढ़ाई की थी, को दिनमान' पढ़ते हुए देखना, जिसे वर्ग 'घ' या तो पढ़ नहीं सकता या पढ़ना ही नहीं चाहेगा, मेरे लिये एक उत्तेजक अनुभव था।

वर्ग 'च'..... यह वर्ग अशिक्षित समुदाय का है। ये हिन्दी में भी अशिक्षित हैं। इनकी बोली में शिक्षितों अथवा अर्ध-शिक्षितों की बोली की अपेक्षा अधिक विविधता है।

Scanned with CamScanner

अन्ततः हमें वर्ग 'छ' को भी देखना होगा।

वर्ग 'छ'...यह तथाकथित उन प्रवासी लोगों का वर्ग है जिनकी मातृभाषा हिन्दी से इतर है। भाषा की दृष्टि से अल्पसंख्यकों में से दिल्ली में सब से बड़ा वर्ग पंजाबियों का है, परन्तु केवल शिक्षित सिक्ख लोग ही पंजाबी भाषा में जुड़े हुए हैं। अन्य पंजाबियों ने स्वयं को हिन्दी परिवेश के अनुकूल ढाल लिया है। जहाँ तक दिल्ली का प्रश्न है, पंजाबियों के बाद कश्मीरियों तथा सिन्धियों ने हिन्दी-स्थिति के साथ पूर्ण मेल बना लिया है। दिल्ली में प्रायः सभी तमिल-भाषी और बंगाली शिक्षित हैं। उनका भाषागत जीवन त्रिभुजीय है।

निष्कर्षतः हिन्दी-क्षेत्र की भाषा-समस्या के लिये मुझे कुछ समाधान भी सुझाने चाहिए।

वर्ग 'ग' और 'घ' को वर्ग 'का' की ओर बढ़ना चाहिए। उसके लिये उन्हें अपने अंग्रेजी-ज्ञान को नहीं छोड़ना चाहिए अपितु उन्हें भारत के साथ अपनी पहचान स्थापित करने के लिये केवल साहित्यिक हिन्दी का पर्याप्त ज्ञान अर्जित करना होगा। वर्ग 'ङ' तथा वर्ग 'च' के लिये शिक्षा तथा संस्कृति के मान में वृद्धि के अवसर प्रदान करने चाहिए। उनका वर्ग 'क' अथवा 'ख' में स्थान्तरण वांछनीय है।

स्थानान्तरण

पाद टिप्पणियाँ

(1) यह डा० नोरिहिको उचिदा का निजी अनुभव है।

(2) देखिये, गमपर्ज : 'लैंग्विज इन सोशल ग्रूप्स' (कलिफोर्निया 1971) पृष्ठ 145

(3) 'भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी' (दिल्ली, तृतीय संस्करण 1963) पृष्ठ 173

(4) 'नवभारत टाइम्स' (नई दिल्ली, जनवरी 30, 1975)

(5) 'हिन्दुस्तान टाइम्स' (नई दिल्ली, फरवरी, 13, 1975)

(6) 'लैंग्विज इन सोशल ग्रूप्स', पृष्ठ 4

(7) 'हिन्दुस्तान टाइम्स' (अक्तूबर 26, 1975)

(8) 'नवभारत टाइम्स' (अप्रैल 13, 1976)

(9) 'लैंग्विज इन सोशल ग्रूप्स', पृष्ठ 179

(10) वही

(11) 'प्रकाशित मन' (हिन्दी सम्मेलन अंक, दिल्ली, जनवरी 1975)

(12) 'नवभारत टाइम्स' (जनवरी 13, 1975)

(13) 'हिन्दुस्तान टाइम्स' (फरवरी 19, 1975)

[इसका मूल लेख 'जापान क्वाटरली' (नई दिल्ली, अप्रैल 1976, खण्ड २, अंक ३) में अंग्रेजी में छपा हुआ था। उसके आधार पर प्रस्तुत लेखक ने नये सिरे से हिन्दी में लिखा है।]

Scanned with CamScanner

दक्षिण भारत में सतमाहे की रस्म और गीत

डॉ० नोरिहिको उचिदा

[प्राय: सारे भारतवर्ष में गर्भावस्था के दौरान गर्भिणी के लिए कम से कम एक रस्म पूरी की जाती है। साधारणत: उस समय गाना भी गाया जाता है। इस लेख में दक्षिण भारत में प्रचलित रस्म का वर्णन है तथा तीन गीत अनुवाद सहित दिये हुए हैं। इस रस्म के लिए दक्षिण भारत में सीमंत, वळैक्काप्पु आदि नाम हैं। इस निबंध में इस रस्म को "सतमाहे की रस्म" नाम दिया गया है; और गाने को "सतमाहे के गीत" नाम दिया गया है हालांकि "सतमाहे" का शब्द दक्षिण भारत में प्रचलित नहीं है।

सतमाहे की रस्म का वर्णन लोकवार्त्ता-सम्बन्धी पुस्तकों और निबंधों में बहुत कम मिलता है। रस्म का वर्णन न मिलने का एक कारण यह भी है कि प्रजनन-संबंधी कार्यों पर की चर्चा अश्लील मानी जाती है। दूसरे, बचपन से देखते रहने के कारण, भारतीयों के लिए इस रस्म में विशेष आकर्षण नहीं रह जाता, गीतों का संग्रहण न किए जाने का कारण यह भी होगा कि इन गीतों में कलात्मक सौंदर्य कम है। लेकिन मैंने गीतों को इकट्ठा करने की कोशिश की है कि ये गीत भारत की गर्भावस्था-सम्बन्धी प्रथा, परंपरा, रस्म, लोकचिकित्सा, तथा मान्यताओं आदि पर प्रकाश डालते हैं।

तमिल और तेलुगु गीतों की व्याख्या के लिए मैं श्री टी. जानकिरामन्, श्री श्रीपति (आकाश-वाणी श्री ए०पी० दशरथन् नई दिल्ली में द्राविड भाषा शास्त्र संस्थान के प्रतिनिधि और प्राध्यापक इन्द्रा पार्थसारथी (दिल्ली विश्वविद्यालय) का आभारी हूँ। हिन्दी भाषान्तर और संशोधन के लिए जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के प्राध्यापक सत्यभूषण वर्मा तथा विद्यार्थी श्री सुशील डोवल, श्री नवाब अली वारसी, कुमारी नीरा कोंगारी, कुमारी मंजूश्री चौहान की सहायता के लिए भी आभार प्रकट करना चाहूँगा।]

1.0 सतमाहे की रस्म

1.1 रस्म और प्रसव होने की जगह

दक्षिण भारत में प्रसव मायके में होता है और उत्तर भारत में अधिकतर ससुराल में। तदनुसार उत्तर भारत में सतमाहे की रस्म ससुराल में पूरी की जाती है और दक्षिण भारत में प्राय: मायके में पूरी की जाती है। लेकिन कर्नाटक में सतमाहे की रस्म पूरी करने के बाद गर्भिणी मायके भेजी जाती है। इन दोनों परंपराओं का समझौता माना जा सकता है। यह आर्यों और द्राविडों की पुरानी समाज-व्यवस्था के अंतर का द्योतक है।

Scanned with CamScanner

1.2 रस्म पूरी करने का समय

सारे भारत-वर्ष में यह रस्म 7-वें महीने में या 9-वें महीने में यदि संभव न हो तो 5-वें महीने में पूरी की जाती है। शुभकार्यों के लिए समसंख्या पसंद नहीं की जाती है। यह कहने की ज़रूरत नहीं होगी कि भारत की परंपरा के अनुसार यह रस्म शुभ दिन और शुभ मुहूर्त्त देखकर पूरी की जाती है।

1.3 इस रस्म का नाम

वेदिक संस्कार के रूप में इस रस्म को सीमंत कहते हैं। दक्षिण भारत में भी यह नाम किसी हद तक प्रचलित है। लेकिन इस से अधिक लोकप्रिय नाम प्रत्येक प्रदेश में सुनने में आता है। तमिल ब्राह्मण वैदिक संस्कार को सोमंतम् और लोक रस्म को वळैक्काप्पु (चूड़ियों की रस्म) कहते हैं तथा ये दोनों रस्म पूरी की जाती हैं। गैर-ब्राह्मण लोग इसको वळैक्काप्पु कहते हैं और कभी-कभी सीमंतम् भी कहते हैं। लेकिन दोनों एकही रस्म के दो नाम हैं। उत्तर प्रदेश में इसको "सतमासा पूजन" कहते हैं और "गोदभराई" भी कहते हैं। सीमंत नाम प्रचलित नहीं है। पंजाब में इसको 'रीताँ दी रस्म" कहते हैं। बंगाल में इस को "शाध" कहते हैं और महाराष्ट्र में "ओटी भरण"। आंध्र प्रदेश में "गाजुलु तोडिगिचुट" (चूड़ियाँ पहनाना) और "सूडियलु" (उपहार) नाम प्रचलित है। "सीमंतम्" और अति-संस्कृत रूप "श्रीमंतम्" भी प्रचलित हैं, लेकिन वैदिक नाम अधिक उपयोग में नहीं आता। कर्नाटक में वैदिक नाम "सीमंत" या "श्रीमंत" शहरों में अधिक प्रचलित है और गाँव में इसे "बसिरु होसगे" गर्भ का उत्सव कहते हैं। इन नामों से मालूम होता है कि इस रस्म के लिए तमिलनाडु में और आंध्र प्रदेश में चूड़ियाँ पहनाने को सब से अधिक महत्त्व दिया जाता है और उत्तर-प्रदेश में गोद भरने को। कर्नाटक में किसी एक को एकांतिक रूप से महत्त्व नहीं दिया जाता। इसलिए इस रस्म को "बसिरु होसगे" कहते हैं।

1.4 चूड़ियाँ पहनाना

तमिल नाडु में और आंध्र प्रदेश में चूड़ियाँ पहनाना इस उत्सव का सब से महत्त्वपूर्ण अंग समझा जाता है। जहाँ तक मुझे मालूम है, उत्तर प्रदेश और पंजाब में चूड़ियाँ पहनाने की रस्म प्रचलित नहीं है। तमिल ब्राह्मणों में सब से पहिले माता नीम की टहनी को बनी हुई चूड़ी पहनाती है। माना जाता है कि नीम की टहनी संक्रामक रोगों को रोकती है। कर्नाटक और महाराष्ट्र में हरे रंग की चूड़ियाँ पहनाई जाती हैं। चूड़ियाँ क्यों पहनाई जाती हैं, यह किसी को ठीक पता नहीं है। श्रीमती जे. राजलक्ष्मी (2.1) के अनुसार चूड़ियों की आवाज़ सुनकर बच्चा संतोष अनुभव करता है लेकिन यह शायद आधुनिक व्याख्या होगी। सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि चूड़ियाँ सुहाग की प्रतीक समझी जाती हैं। मैसूर के लिंगायत समुदाय की एक महिला ने मुझे बताया कि पुराने ज़माने में प्रत्येक महीने में एक रस्म होती थी। अब खर्च कम करने के लिए चूड़ियाँ सीमंत के समय पहनायी जाती हैं। इससे यह मालूम होता है कि लिंगायतों में वैदिक संस्कार में सीमंत के साथ-साथ चूड़ियाँ पहनाने की लोक-रस्म भी होती थी।

1.5 गाना गाने की प्रथा

हर एक रस्म के लिए महिलाओं का गाना गाना भारत की परंपरा है। तमिल-ईसाई श्रीमती बारबरा (2.2) के अनुसार वेळाळ-ईसाई लोग सतमाहे की रस्म के लिए गाना नहीं गाते। कारण दो हो

Scanned with CamScanner

सकते हैं। एक तो ईसाई लोग हिन्दू रस्मों को संक्षिप्त रूप में ही पूरा करते हैं। दूसरे, तमिलनाडु में हर रस्म के लिए स्त्रियों का गाना गाना उतना प्रचलित नहीं है, जितना कर्नाटक और आंध्र प्रदेश में (3.2)।

1.6 वैदिक और ग़ैर-वैदिक परंपराएँ

सीमंत की रस्म वैदिक-संस्कारों में से एक है। वैदिक सीमंत-संस्कार का वर्णन *Hindu Sanskars* (Raj Bali Pandey : 1969, p. 64-69) में मिलता है। यह वैदिक संस्कार संभवत: पूर्व-आर्यकालिक उत्तर भारत में प्रचलित रस्मों पर आधारित है।

दक्षिण भारत में वैदिक सतमाहे की रस्म और ग़ैर-वैदिक रस्म में नीचे दिये हुए भेद देखने में आते हैं।

1. वैदिक रस्म में पुरोहित का भाग लेना ज़रूरी है जबकि ग़ैर-वैदिक रस्म में पुरोहित को नहीं बुलाया जाता; सुहागिनों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।
2. वैदिक रस्म एक धार्मिक रस्म है जबकि ग़ैर-वैदिक रस्म ग़ैर-धार्मिक है।
3. वैदिक रस्म में होम होता है जबकि ग़ैर-वैदिक रस्म में नहीं।

वैदिक रस्म शास्त्र द्वारा निर्धारित होने के कारण वैदिक सीमंत को तमिल ब्राह्मण पूरा करते हैं। लेकिन किसी जाति में भी सीमंत का वैदिक संस्कार ग़ैर-वैदिक रस्म का स्थान नहीं ले सका है। फलत: दोनों का संबंध निम्नलिखित प्रकारों का हो सकता है।

1. दोनों रस्में पूरी की जाती हैं (जैसे तमिल ब्राह्मणों में)
2. पुरोहित को बुलाकर होम या पूजा करवाते हैं, लेकिन उसमें लोक रस्मों का मिश्रण दिखाई देता है (कर्नाटक)
3. लोक रस्म ही पूरी की जाती है (तमिलनाडु के ग़ैर-ब्राह्मणों में और आन्ध्र प्रदेश में)
4. वैदिक संस्कार ही पूरा किया जाता है (केरल के नम्बूदिरी ब्राह्मणों में)

20. सतमाहे की रस्म का वर्णन

नीचे (2.1,2.2.) दो तमिल सूचिकाओं द्वारा किये गये रस्मों तथा रिवाजों का वर्णन प्रस्तुत है। दक्षिण भारत और उत्तर भारत के रस्म रिवाजों में कहीं समानता और कहीं असमानता भी पायी जाती है। समानताओं और असमानताओं के सन्दर्भ में उत्तरप्रदेश की वैश्य (गुप्ता) जाति की एक रस्म को उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है (2.3.)।

इसके अतिरिक्त रस्म की जानकारी के लिए *Folklore of Tamil Nadu* (Lakshmanan : 1973, p. 76) तथा *Caste and Tribes of South India* (Thurston : 1909) आदि पुस्तकें देखी जा सकती हैं।

Scanned with CamScanner

2.1 तमिल ब्राह्मणों में मनायी जाने वाली सतमाहे की रस्म

(श्रीमती राजलक्ष्मी (49), कोण्डपुरम्, तञ्जावूर जिला, में जन्मी हुई स्मार्त्त ब्राह्मण के अनुसार)

गर्भवती होने के बाद पाँचवें या सातवें महीने की पंचमी को स्त्री को ससुराल से मायके भेज दिया जाता है। साधारणत: ससुराल से मायके भेजने की जिम्मेदारी स्त्री की ननद के ऊपर होती है लेकिन ननद के न होने पर पति की चचेरी बहन आदि इस रस्म को पूरा करती है। इन स्त्रियों के साथ ससुर पति का बड़ा भाई आदि भी जा सकते हैं। यह कार्य शुभ मुहूर्त पर ही किया जाता है। उपहार के रूप कोई चीज़ ले जाने की प्रथा नहीं है।

यह धार्मिक संस्कार न होने के कारण इसमें पुरोहित आदि की आवश्यकता नहीं पड़ती। लकड़ी से बने हुए आसन को अल्पना से सजाकर गर्भवती स्त्री को पूर्व दिशा की ओर मुँह करके उस पर बिठाया जाता है। स्त्री को काले रंग की साड़ी पहनाई जाती है। (यों तो काली साड़ी पहनने की अनुमति नहीं होती) इस को मसक्कै करुॅप्पु (दोहद कालिमा) कहते हैं। स्त्री के सामने का फ़र्श एक बड़ी अल्पना से सजाया जाता है। उस पर टोकरी या दूसरे बरतन रखे जाते हैं जिनमें पचभक्षणंगळ् (पाँच प्रकार के खाद्य) रखे जाते हैं। उदाहरणत:

1. मुरुॅक्कु (एक प्रकार का नमकीन)
2. तेन्कुषल् (एक प्रकार का नमकीन)
3. परुॅप्पु-तेङ्गाय् (चने, नारियल और गुड़ का मिश्रण)
4. लड्डू
5. कोई दूसरी चीज़

इस रस्म के लिए पहले मनिहार को बुलाया जाता है। हल्दी के चूर्ण को पानी में मिलाकर शं बनाया जाता है, विनायक (गणेश) पूजा से कार्य शुरू होता है। एक थाली में नीम की टहनी से बनी हुई चूड़ी को रखा जाता है आर्थिक क्षमतानुसार सोने या चाँदी की चूड़ी भी रखी जाती है। थाली पान, सुपारी, रोली आदि भी रखी जाती हैं। (नीम की चूड़ी रखने का रिवाज इसलिए है कि इस संक्रामक रोगों का निवारण होता है).

इस कार्य में सुहागिन स्त्रियाँ ही भाग लेती हैं। इनकी संख्या 5 होती है। पहले गर्भवती स्त्री की माता नीम की टहनी की चूड़ी गर्भवती स्त्री को पहनाती है जो कि सबसे महत्वपूर्ण समझा जाता है। इसके बाद स्त्री की सास उस को सोने या चाँदी की चूड़ी पहनाती है। इसके पश्चात् पाँच सुहागिन मिलकर अक्षत और चंदन की लेई को स्त्री की कमर के मेरुदंड पर लगाकर थपकी देती हैं। इसके बाद स्त्री स्वजनों को प्रणाम करती है। मनिहार स्त्री के बायें हाथ में रोग़न की चूड़ी पहनाता है। इसके बाद मनिहार और अन्य स्त्रियाँ स्त्री को दूसरी किस्मों की चूड़ियाँ पहनाती हैं। चूड़ियाँ इतनी सावधानी से पहनाई जाती हैं कि वे टूटें नहीं। चूड़ियों का टूटना अपशकुन समझा जाता है। चूड़ियाँ पहनाने

Scanned with CamScanner

बारे में लोगों के तरह-तरह के मत हैं लेकिन इनमें से एक भी प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता। श्रीमती राजलक्ष्मी के अनुसार बच्चा चूड़ियों की आवाज़ सुन कर खुश होता है।

"सीमंतम्" होने के बाद शाम को औरतें मसक्कै-प्पाट्टु (दोहद-गीत) गाकर गर्भिणी स्त्री का मनोरंजन करती हैं। यह रस्म ब्राह्मण जाति में अधिक आडंबर से मनायी जाती है। इकट्ठे हुए लोगों को जो खाना दिया जाता है उसमें पोंगल (एक प्रकार की खिचड़ी) सब से जरूरी चीज़ समझी जाती है। "सीमंत" समाप्त होने पर आम तौर पर लोग उसी दिन शाम को वापस जाते हैं। सुविधानुसार कुछ दिन बाद भी जा सकते हैं।

प्रसव के 22 वें दिन स्त्री ससुराल जा सकती है। सुविधानुसार 40 दिन के बाद या कभी दो-तीन महीने के बाद भी ससुराल जा सकती है।

दूसरा प्रसव अधिकतर ससुराल में होता है। इसलिए साधारणत: यह रस्म नहीं मनायी जाती।

2.2 तमिल वेळाळ ईसाइयों में मनायी जानेवाली सतमाहे की रस्म (5-4-1980)

(श्रीमती F. बारबरा (50), ऊटी में जन्मी तिरुच्चिरपळ्ळि, तमिलनाडु की वेळाळर (रोमन कैथोलिक जाति के अनुसार)

तमिलनाडु की प्रथा के अनुसार, आम तौर पर, गर्भवती स्त्री को सातवें महीने में मायके बुलाया जाता है। एक दिन निश्चत करके, स्त्री के माता-पिता दही-भात (तयिर्-सादम्), इमली का भात (पुळि-सादम), निंबू का भात (एॅलुमिच्चम् सादम्), टमाटर का भात (नक्काळि सादम्), नारियल का भात (तेंगाय् सादम्), पकी हुई सूखी सब्ज़ी, भुना हुआ गोश्त या सब्ज़ी, लड्डू, मैसूर पाक, अतिरसम् (एक किस्म की मिठाई), बड़ा, खीर आदि लेकर उसको ससुराल आते हैं। माँ अपने साथ लाई हुई नई साड़ी और काँच की चूड़ियाँ गर्भवती को पहनाती है। बालों में फूल गूँथ कर बदन में चंदन लगाता है। इसके बाद एक सुहागिन स्त्री (माता आदि) अपने साथ लाया हुआ नारियल, फल, पान-सुपारी, फूल, कुमकुम, हल्दी वगैरह उसकी साड़ी के पल्ले में डालती है। इसे मडि कट्टुदल् (गोद भरना) कहते हैं। इस रस्म में रिश्तेदार भी भाग लेते हैं। यदि किसी कारण वश स्त्री को मायके न लाया जा सके, तो उसे गिरजे में अथवा घर के बाहर ले जाया जाता है।

2.3 उत्तर प्रदेश के वैश्यों में मनायी जानेवाली सतमाहे की रस्म (20-1-1979)

(श्रीमती कमला गुप्ता (25) इलाहाबाद निवासी के 16 जुलाई 1980 को दी हुई जानकारी के अनुसार)

सात महीने पूरा होने के पश्चात् आठवाँ शुरू होने पर ससुराल में "सतमासा पूजन" नाम की पूजा होती है। नाइन या ससुराल की महिलाएँ आटे से आँगन में चौक पूरकर पटला बिछाकर पति-पत्नी को बिठाती हैं। दोनों का मुँह पूर्व की ओर होना चाहिए। इस पूजा के लिए पंडित बुलाया जाता है।

Scanned with CamScanner

पंडित द्वारा हवन आदि होता है। इस पूजा के लिए बहू जो कपड़े पहनती है, वह सब मायके से आते इसके अतिरिक्त सभी रिश्तेदार बहू को कपड़ा देते हैं।

पूजा के बाद पंडित बहू की गोद मायके से आये हुए नारियल, फल, मेवा, मिठाई आदि से हैं। पूजा के बाद सुहागिनें गाना गाती हैं। उस समय सोहर के गाने गाये जाते हैं। उसके बाद भोज है। इस अवसर पर गाया जाने वाला सोहर का गीत नीचे दिया हुआ है। (16-1-1980)

ननदिया आज छम-छम नाचे
ये राजा मेरे माथे की बिंदिया भारी
ननदिया आज उसको माँगे

जो बहना मेरी माँगे मना मत करना
समय ऐसा न रोज आए

ननदिया आज छम-छम नाचे
ये राजा मेरे कानों के कुंडल भारी
ननदिया आज इसको माँगे

जो बहना मेरी माँगे मना मत करना
समय ऐसा न रोज आए

ननदिया आज छम-छम नाचे
ये राजा मेरे गले का हरवा भारी
ननदिया आज उसको माँगे

जो बहना मेरी माँगे मना मत करना
समय ऐसा न रोज आवे

ननदिया आज छम-छम नाचे
ये राजा मेरे हाथों के कंगन भारी
ननदिया आज उसको माँगे

जो बहना मेरी माँगे मना मत करना
समय ऐसा न रोज आए

ननदिया आज छम-छम नाचे
ये राजा मेरे पैरों के पायल भारी
ननदिया आज उसको माँगे

जो बहना मेरी माँगे मना मत करना
समय ऐसा न रोज आए
ननदिया आज छम-छम नाचे

Scanned with CamScanner

3.0 सतमाहे के गीत

3.1 गीतों के विषय

दक्षिण भारत में प्रचलित सतमाहे के गीतों के विषय निम्नलिखित हैं।

(क) गर्भावस्था का वर्णन

गर्भावस्था के वर्णन में प्रत्येक पंक्ति "पहिले महीने में·····, दूसरे महीने में·····" ऐसे शब्दों से आरंभ होती है। सतमाहे की रस्म में उपस्थित स्त्रियाँ इस प्रकार के गीत गाकर खुशियाँ मनातो हैं। ऐसे अवसर पर गीत गाने का कार्य सिर्फ खुशियाँ मनाना नहीं है। आधुनिक युग में "गर्भधारण से प्रसव तक" आदि शीर्षक को अनेक पुस्तकें छप चुकी हैं और ऐसी पुस्तकों के द्वारा गर्भवती स्त्रियाँ स्वयं ही सभी आवश्यक बातों से भली भाँति परिचित हो जाती हैं। पुराने समय में स्त्रियाँ, जो अधिकतर निरक्षर होती थीं, गीतों के माध्यम से गर्भावस्था-संबंधी रस्मों और उपचार आदि का ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पाढ़ी तक पहुँचाती थी।

(ख) गर्भिणी की आवश्यकताओं का वर्णन

इस प्रकार के गीतों में हर पंक्ति के अत में "चाहिये" शब्द आता है। इस प्रकार के गीतों में गर्भिणी बतातो है कि उसको क्या क्या आवश्यकताएँ हैं। इस प्रकार के गीत गाने का कार्य भी खुशियाँ मनाने के साथ साथ स्त्रियों को यह अवगत कराना है कि गर्भिणी को किन किन चीज़ों को आवश्यकता होती है और उसका उपचार कैसे करना चाहिये। कलात्मक दृष्टि से इस श्रेणी के गीतों में कोई आकर्षण नहीं होता।

(ग) खुशी के गीत

इस प्रकार के गीत आंध्र प्रदेश में अधिक प्रचलित हैं। इन गीतों में गर्भवती स्त्री के सगे संबंधियों में से कुछ सुहागिनें मिलकर एक दूसदे से ये कहती हैं कि "चलो गर्भवती स्त्री के घर चलें" और साथ ही इसमें गर्भवती स्त्री के रंग-रूप को प्रशंसा करती हैं। और "लायक लड़का पैदा हो" इस प्रकार का आशीर्वाद भी देती हैं। इस श्रेणी के गीतों में कलात्मक सौंदर्य की संभावना अधिक रहती है।

(घ) भक्ति

दक्षिण भारत में लोकगीतों को भक्ति गीतों का रूप देने की प्रवृत्ति मिलती है। उदाहरणत: लोरीगीत में बच्चे को भगवान् कृष्ण समझकर उस के गुणों का वर्णन किया जाता है। इस रीति के अनुसार गीत (4.2.) में दंपति ने अच्युत से पुत्र के लिए प्रार्थना की और भगवान् ने उनकी कामना पूरी की। गीत (4.3) में गर्भिणी को सीता समझकर उसका वर्णन किया गया है।

दक्षिण भारत में उपर्युक्त विषयों में से एक या दो को लेकर सतमाहे का गीत गाया जाता है।

Scanned with CamScanner

3.2 दक्षिण भारत में सतमाहे के गीतों की परंपरा

महिलाओं का हर एक रस्म में गीत गाना भारत में व्यापक रूप से प्रचलित है। ऐसे गीत गानेवाली स्त्रियाँ आंध्र प्रदेश और कर्नाटक में अधिकतर मिलती हैं। तमिलनाडु और केरल में स्थिति कुछ और है। ग़ैर-ब्राह्मण जातियों में रस्म के लिए गीत गानेवाली स्त्रियाँ मुश्किल से मिलती हैं। कारण यह हो सकता है कि अँग्रेज़ों का राज दक्षिण भारत में सब से पहिले तमिलनाडु से शुरू हुआ था और केरल पश्चिमी शिक्षा में सब से आगे है। इन कारणों से इन दोनों प्रदेशों में पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव सब से अधिक पड़ा है। फलत: गाने की रीति समाप्त हो गई है। लेकिन यह सिद्धांत ग़लत लगता है क्योंकि विदेशी संस्कृति का प्रभाव सब से ज्यादा शिक्षित वर्ग पर पड़ना चाहिये। लेकिन तमिलनाडु और केरल में दूसरी जातियों की अपेक्षा ब्राह्मणों में सब से अधिक रस्मों के गीत गाये जाते हैं। इस लिए मालूम होता है कि हर एक रस्म के लिए गीत गाने की रस्म, जो भारतीय लोक-संस्कृति की मुख्य धारा है, तमिल नाडु में ग़ैर-ब्राह्मण जातियों में जड़ नहीं पकड़ सकी है।

4.0 सतमाहे के तीन गीत

4.1. दोहद गीत (तिरुनेलवेलि जिला तमिलनाडु से)

श्रीमती जे. सरस्वती, ब्राह्मण जातीय, ग्राम शिवगिरि की हस्तलिखित पुस्तिका से आभार :—

मचक्कैप् पाट्टु

कोवैप्पष़—निरत्तारे

कुयिल् मोॅषियाळे—एॅन्दन्
अन्न मोॅषि याळे—उन्दन्
अडि वयिरॅरिॅल् तान् एॅन्न ?

वेण वेण बाग्गियंगळ्
विद विदमाय नान् तरुवेन्
उरुक उरुक कोॅरु कोॅप्पारै
वेॅन्नीरुम् वेणुम्
आरिॅन पिरॅ्पाडु अरैॅत्तवलै वेणुम्

तवलै रोॅम्प चादम् वेणुम्
ताकम् तण्णीर वेणुम्
एट्टोड तयिर् वेणुम्
इञ्जि ऊरॅकाय् वेणुम्

Scanned with CamScanner

इन्बमान चादत्तुक्कोर्
ऐॅलुमिच्चंकाय् वेणुम्
नयमान चात्तुकोॅरु
नार्त्तङ्काय् वेणुम्
पुळिक्काद चात्तुक्कोॅरु
पच्चै माङ्गाय् वेणुम्

ऐॅण्णॅय्प् पषयदुक्कु
मोॅळकाय्प्पोॅडि वेणुम्
चुडच् चुडत् तोचै वेणुम्
चुण्डैक्काय् वेणुम्

चुक्कु मिळकु पोट्ट
इट्टलियुम् वेणुम्
अरुवरुत्त नाक्कुक्कोॅरु
अळ्ळु चीडै वेणुम्

विरु विरुत्त नाक्कुक्कोॅरु
वेॅल्लच् चीडै वेणुम्
पोॅक वरत् तिङ्ग
पोॅरिकडलै वेणुम्
पोॅरिच्च करि वेणुम्
वाषै क्काय्प् पोॅरित्तूवल्[1]
वकै वकैयाय् वेणुम्
पोॅरि विळङ्गाय् वेणुम्
वेॅळ्ळरिक्काय्प् पोॅडित्तूवल्
विदमाक वेणुम्
करुणैक् किषङ्गिले ओॅरु वीचै वेणुम्
पाळ् रोॅम्बच् चेर्त्तदोॅरु
पायचम् वेणुम्
परुप्परुचि पोॅङ्गल् वेणुम्

1. पोॅडित्तूवळ् ?

Scanned with CamScanner

पच्चैप् पुळि वेणुम्
इलैयिले चादिक्क तेङ्गायुम् वेणुम्
ऐंडुत्तुच चादिक्क ओंरु एत्त तङ्गै वेणुम्
नालु नाळ् नाळैक् कोंरु
एंण्णेंय मुरैंवेणुम्
नयमाकत् तेय्त्तु विड नात्तनार् वेणुम्
एंट्टु नाळ् नाळैक् कोंरु
एंण्णेंय् मुरैंवेणुम
इन्वमाय्त तेय्त्तु विडत् तायारुम् वेणुम्
पिचुक्कुत् तलै तेय्त्तु विड
चिरु तायार् वेणुम्
मञ्जळ् अरैत्तु वैक्क
मदिनि ओंरुत्चि वेणुम्
इत्तनैयुम् चेंय्दु तर
एत्त तङ्गै वेणुम्
200 पवुन् तारेन्
वेण्डियदैच् चेंयदु कोळ्ळ
एलेलो·····एलेलो·····

दोहद-गीत

कुंदरू जैसे रंग वाली
कोकिल जैसी बोलने वाली
हंस जैसी चलने वाली[1]
तेरे पेट में क्या है ?

जितनी भी चीजें चाहे तू
दूंगा वो सब तरह तरह की
मेरे को हंडा भर गरम गरम पानी चाहिये
ठण्डा होने पर आधा घड़ा और चाहिये.

1. मूल में—हंस जैसी बोलने वाली ।

Scanned with CamScanner

मेरे को घड़ा भर भात चाहिये
और पीने का पानी भी
मेरे को ठोस दही चाहिये
और अदरक का अचार भी.

मीठे भात के साथ
नींबू का अचार चाहिये
अच्छे पके भात के साथ
गलगल का अचार चाहिये
ताजे पके भात के साथ
कच्चे आम का अचार चाहिये

और गरम दोसे के साथ
पिसी लाल मिर्च चाहिये
बासी भात, तिल के तेल के साथ
सुंडाइ[1] फल चाहिये

सोंठ और काली मिर्च के साथ
मेरे को इडली भी चाहिये
स्वाद मांगतो जीभ को
चुल्लू भर सीडाइ[2] चाहिये.

स्वाद चाहती जीभको
गुड़ की भी सीडाइ[2] चाहिये
कभी कभी खाने को
लाई और चना चाहिये.

भुना हुआ मांस चाहिये
और तले केले भी
तरह तरह के चाहिये

---

1. एक छोटा फल जिसे सुखा कर, तलकर खाते हैं।
2. पिसे हुए चावल से बना हुआ छोटा गोल नमकीन।

Scanned with CamScanner

खीरे की भाजी भी
तरह तरह की चाहिये.

पसेरी भर जिमीकन्द चाहिये
खूब दूध वाली खीर चाहिये
दाल और चावल की खिचड़ी चाहिये
कच्ची इमली चाहिए.

पत्ते पर परोसने को नारियल चाहिये
परोसने के लिए छोटी वहन चाहिये
हर चौथे दिन में मालिश चाहिये
अच्छी तरह रगड़ दे, ऐसी ननद चाहिये

हर आठवें दिन तेल से नहलाना चाहिये
और प्यार से रगड़ दे वह मां भी चाहिये
तेल से चिकने माथे को
रगड़ने को छोटी मौसी चाहिये.

हलदी पीस के रखने को
मेरे को भाभी चाहिये
ये सब करने के लिये
एक लायक छोटी बहन चाहिये

दो सौ तोला सोना दूंगा
इसी में तू जो चाहे कर ले
एलेलो एलेलो एलेलो·····[1]।

4.2. सीमंत-गीत (तञ्जावूर जिला, तमिल नाडु से)

श्रीमती ज्ञानसुंदरी, ब्राह्मणजातीय. ग्राम इञ्जिक्कोल्लै के मेरे लिए टेप किए हुए गीतों के सौजन्य से :—

1. गाना खत्म होने के बाद एक तरह का आलाप।

Scanned with CamScanner

पार् पुकष्‌ुम् चिम्माचनपतियै नाडिनार्
रामदारै[1] मादवरै तीर्त्त माडिनार्
अर्च्चनैगळ् अन्नपाकम् चेॅय्दु मकिष्‌न्दार्
अच्चुतन् तिरुवडियै पणिन्दु पुकष्‌न्दार्
दम्पतिगळ इरुपेरुम् चन्नदि चेॅय्दु
नळ्ळ चन्तति अरुळुम्एॅन्रॅ वेण्डिये निन्र्
अर्च्चकर् मूलमाय् नरचिम्मनुम् अप्पो
पुदल्वन् अरित्तोन् एॅन्रु तिरुवाक्कुरैत्तार्
अन्रु मुदळ् गर्व्वमाकि अषकुमेनियाळ्
मादम् मून्रॅ चेॅन्रॅदुमे मचक्कैयु मानाळ्
लड्डु लाडु पेनि काजा कचविकर् देॅन्बळ्
ओॅट्टु माङ्गनि कट्टिट वेॅल्लम् पुळिकर्देॅन्बळ्
अन्नवाडै आडैत्तयिर् आकादु एॅन्बळ्
मिन्नल् कोॅडि पोल् तुवण्डु मेनि वेॅळुत्ताळ्
नान्गु मादम् आन वुडन् मचक्कै तेॅळिन्दु
नलमान वट्चणङ्गळ् नाडि पुचित्ताळ
तन्दै आत्तिळ् विन्दैयाक वळैकाप्पु चेॅय्ःाळ्
अञ्जु वकै बट्चमुम् चीरुम् एॅडुत्तार
मल्लिकै मो ट्टु पुडवै मामियार् वाङ्ग
वेॅल्लियै मणैयिल् वैत्तु पूवुम् चूट्टिनाळ्
ऐन्दाम् मादम् अत्तै पाट्टिट आत्तुक्कष्‌त्तु
कोॅञ्जि आबरणम् पूट्टिट चूल विरुन्दिट्टार्
ऐॅट्टाम् मादम् पिर्न्दवुडन् चीमंतम् चेय्दार्
वेण[2] पेरुक्कु वेण्डिय दानंगळ् चेय्दार
ईरैन्दु मादङ्ळुम् पूर्णमा किये
पारोर पुकष् नल्ल बालन् पिर्न्दान्
वारि एॅडुत्तुम् अबाळ् मार्बुडन् अणैत्तु
मदिमुकत्तै मुत्तामिट्टु मकिष्च्चि यानार्कळ्
आरिरारो·····आरिरारो·····

1. नामदारि ?
2. वेण—वेण्डिय ।

Scanned with CamScanner

जाकर जग-पूजित सिंहासन पति में
दम्पति ने त्रिपुंडधारी माधव अभिषेक किया।
अर्चना नैवेद्य चढ़ा सुख से
अच्युत के पाँव पखार लिये।

दोनों ने तब विष्णु से—
करी सुपुत्र की एक कामना
कहलाया विप्र से नरसिंह ने
होगी पूरी तेरी कामना
हुआ गर्भ उसी दिन सुन्दरी को।

होते ही पूरा तीसरा महीना, उसका जी मिचलाया
लड्डू, फेनी खाजे को भी कड़वा पाया
कलमी आम और गुड़ को भी खट्टा पाया
दही, भात भी उसको बिलकुल रास न आया
चंचल, कोमल बदन पे उसके पीलापन था छाया

चौथा महीना शुरू हुआ, और जी भी उसका ठीक हुआ।
तब अच्छे पकवान उसने माँग-माँग कर खाए
और मायके वालों ने फिर उसकी गोद भराई।
मिले पकवान पाँच तरह के, साथ मिले उपहार

बिठाया सास ने चौकी पर,
पहनाई साड़ी मल्लिका के अंकुर की
और सजाया फूलों से फिर बालों को

हुआ शुरू फिर पाँचवा महीना,
दादी, चाची ने बुलवाया घर को
प्यार से पहनाने को गहने
और खाना खिलवाने को।
आठवें माह हवन कराया
और खुले हाथ से दान दिया

Scanned with CamScanner

हुए जब पूरे महीने दस
सर्व-गुण सम्पन्न बालक जन्मा
सबने उसे सीने से लगाया
चन्दा-मुख को चूम लिया
आरिरारो·····आरिरारो[1]·····

4.3 सीमंत-गीत (पश्चिम ग दावरी जिला आँध्र प्रदेश से)

श्रीमती मद्दारि वेंकट रमणम्मा (76), नियोगी ब्राह्मण जातीय, ग्राम ताडिमळ्ळ, जिला पश्चिम गोदावरी ने इस गीत को अपनी पुत्री अ० छायादेवी, उपग्रन्थालयाध्यक्ष, जवाहरलाल नेहरू विश्व-विद्यालय के माध्यम से अप्रैल, 1980 में मुझे पहुँचाया :

श्रीमंतम् पाट

श्री जानकी देवि श्रीमन्तनरे
महालक्ष्मी सुन्दर बदनमु गनरे
पन्नीरु गन्धमु चेॅलि पैन चिलकिञ्च
कानुकलु कट्नालु चदिविञ्चरम्मा
मल्लेॅ मोॅल्ला सरुलु सति जडलो सवरञ्चि
येॅल्ला वेडुकलन चेयिञ्चरम्मा ॥ श्री ॥

कुलुकुचुन्न कलिकोनि तिलकिञ्च
अलुक चेॅन्दनीक अत्तरिञ्चरम्मा
कुलमेॅल्ल दीपिञ्च कोॅमरूनि कनुमनुचु
येॅल्ला मुत्तैदूलु दीविञ्चरम्मा
श्री जानकी देवि श्रीमन्त वनरे ॥

सीमंत-गीत

आओ मिलकर गाएँ, जानकी देवी का सीमंत-गीत
आओ मिलकर देखें मुखड़ा, सुन्दर महालक्ष्मो का
सर पर छिड़कें उसके, पानी गुलाब और चन्दन का
बहनो आओ, करवाएँ घोषणा उपहारों की

1 गाना खत्म होने के बाद एक तरह का आलाप

Scanned with CamScanner

आओ सजाएँ उसके बालों को, मल्लिका के फूलों से
और करें फिर उसके संग, हम सब छेड़-छाड़
इठलाती हुई स्त्री को—
इच्छा पूरी करके प्रसन्न करो।
ये कह कर आशीष दो बहनो—
जन्मो ऐसे बालका को
जो करे नाम ऊँचा इस कुल का
आओ मिलकर गाएँ सोमंत जानकी देवी का।

सन्दर्भ पुस्तकें

1. Lakshmanan Chettiar, S.M.L. : *Folklore of Tamil Nadu* National Book Trust, New Delhi 1973, p. 76 (xi+208 pp.)
2. Pandey, Raj Bali : *Hindu Samskāras* Motilal Banarsidass, Delhi 1969, p. 64-69 (xxvi+237 pp.)
3. Thurston : *Castes and Tribes of South India*, 7, vols. Madras 1909.
4. यादव, शंकरलाल : 'हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य', हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद सं० 2017, p. 127-128 (499 pp.)

Scanned with CamScanner

हजारीप्रसाद द्विवेदी का उपन्यास

बाणभट्ट की आत्म कथा : एक विवेचन

यूसुके ओहीरा

जापान के जिस वातावरण में मेरा जन्म और संस्कार हुआ था, उसमें मैं अभाव-भाव अनुभव कर रहा था—'किसी का अभाव है'। उसे 'एब्सर्डिटी आफ़ लाइफ़' कहें या अनास्था कहें, मैं सचमुच निराश और निरुत्साह इधर-उधर की किताबें पढ़ता रहा। जिन दिनों मैं हिन्दी बी०ए० के तीसरे वर्ष में पढ़ रहा था। उन दिनों मुझे 'बाणभट्ट की आत्मकथा' पढ़ने का अवसर मिला। पढ़कर आश्चर्य हुआ कि इसमें ऐसी कोई चीज़ है जो कि आजकल हम खो गये हैं। मैंने उस समय तक इस प्रकार कहने वाले 'बुड्ढे' को कभी नहीं देखा था कि 'सौ बात क्यों जानता फिरता है ? एक को समझ और उसी को कर।' मैं द्विवेदी जी की रचनाओं को एक-एक करके पढ़ने लगा। पहले ललित निबंध फिर उपन्यास और डेढ़ साल पहले यहाँ आने के बाद मैंने उनके शोध कार्यों को भी पढ़ना शुरू किया। उनके प्रकांड पाण्डित्य में कवित्व का आभास है। फक्कड़पन में आत्मीयता का भाव है। और स्वभाव कितना भोला है! जैसाकि ज्ञानी तपस्वी 'रैक्व' भी अपनी पीठ में सनसनाहट महसूस करता है और वह प्रायः खुजलाता रहता है वैसे मेरे मन में जो अभाव का भाव था उसकी पूर्ति उन्हीं की रचनाओं से मिल गई। इसलिए मैं बड़ी प्रसन्नता के साथ इसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना चाहूँगा कि मुझे केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, दिल्ली में पढ़ने का सौभाग्य मिला और इस विषय पर लिखने की अनुमति दी गई।

मैं डा० कृष्ण कुमार गोस्वामी का आभारी हूँ जिन्होंने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' सम्बन्धी विषय पर अनेक बहुमूल्य सुझाव दिये और मेरी पांडुलिपि को आदि से अन्त तक मनोयोगपूर्वक पढ़कर सुधार किया।

अन्त में, पिछले साल 19 मई को द्विवेदी जी का निधन इसी दिल्ली में हुआ। श्रद्धांजलि ॥

[सूचना : प्रस्तुत निबन्ध के वाक्यों के नीचे कोष्ठक में जो पृष्ठसंख्या दी गयी है वह पाठ्य पुस्तक के लिए मैंने 'राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1974 दसवीं आवृत्ति' का प्रयोग किया है।]

'बाणभट्ट की आत्मकथा' का स्वरूप

'बाणभट्ट की आत्मकथा' आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का प्रथम उपन्यास है। यह प्रारम्भ में 'विशाल भारत' के जनवरी अंक, 1943 ई० से छपना शुरू हुआ था (1)। बाद में 1946 ई० में इसे पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया।

Scanned with CamScanner

इस कृति के बारे में उन्होंने स्वयं कहा है कि जब वे शांतिनिकेतन में प्राचीन भारत के कला-विनोद रर अध्ययन कर रहे थे तब वे इस प्रकार के शोधकार्य से ऊब गये थे। इसलिए उन्होंने सोचा कि इसी विषय पर अब एक गप बनायी जाये। उनकी यह गप 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के नाम से आई। उनके लिए अपने उपन्यास 'शुद्ध गप' हैं और ज्ञान को अधिक उपभोग्य बनाना' साहित्य है। (2)

जिन दिनों द्विवेदी जी यह उपन्यास लिख रहे थे उन दिनों द्वितीय महायुद्ध हो रहा था। इसका संकेत उपन्यास के कथामुख में 'दोदो' के पत्र से स्पष्ट मिलता है। वैसे तो उनके प्रति कभी कभी ऐसी आलोचना सुनने को मिलती है कि वे प्राचीन काल के इतिहास में डूबे हुए हैं. यह उनकी एक तरह की पलायनवादी प्रवृत्ति है। इस तरह की आलोचना छायावादी कवियों के संबंध में भी कभी कभी सुनाई देती है। वास्तव में ऐसा नहीं है। कुछ आलोचक अभिव्यक्ति की कठिनता, विषय की प्राचीनता आदि को देखते हैं, लेकिन वे अभिव्यक्ति का प्रासंगिकता अर्थात् उपयुक्त स्थान पर शब्दों का सही प्रयोग और विषय की नई दृष्टि की ओर ध्यान नहीं देते। अतः इस प्रकार का वक्तव्य देने से पहले द्विवेदी जी की 'आत्मा की पुकार' सुननी चाहिए, जैसे 'जाहा घटे ताहो सब सत्य नहे !' (3)

इस उपन्यास के लिए 'आत्मकथा' शब्द का जो प्रयोग किया गया है उससे कई ग़लतफ़हमियाँ हुई हैं। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' वास्तव में बाण द्वारा स्वयं लिखी गई 'आटोबायाग्राफी' नहीं है। 'आत्म कथा' शब्द से दो अथ निकलते हैं। एक 'आटोबायोग्राफ़ी' अर्थात् अपने जीवन पर अपने आप लिखी गई जीवनी। इसे एक औपन्यासिक कला या शैली के रूप में भी प्रयुक्त किया जा सकता है। किसी रचना का वर्णन प्रथम पुरुष के रूप में करना इस शैली की पहचान है। दूसरी, आत्मा की कथा, अर्थात किसी व्यक्ति के मन में किसी विषय पर कुछ अभिव्यक्ति करने की प्रबल इच्छा हो उसी का आध्यात्मिक या मानसिक रूप देकर अभिव्यक्त करना। जिस काल में और जिस स्थान पर यह उपन्यास लिखा जा रहा था उसके यथार्थ से चाहे उपन्यास के यथार्थ का संबंध अधिक दिखाई नहीं देता हो, परन्तु उसको कोई परवाह नहीं है, लेखक का उद्देश्य तो पाठक तक ठीक पहुँच जाता है। यह पद्धति काव्य के क्षेत्र में कोई नहीं है। यह यह पद्धति जरा 'पूर्वदीप्ति पद्धति' से मिलती है, लेकिन उद्देश्य अलग है। (4) उक्त बातों की पुष्टि 'प्रूस्त' (5) की 'चेतना की धारा' (Stream of consciousness) में मिल जाती है। प्रूस्त के मतानुसार यथार्थता केवल प्रत्यक्ष यथार्थ का बिम्ब नहीं है। जब आदमी मन ही मन सोचता है या जब किसी वस्तु का अनुभव करता है तब वह न तो व्याकरणिक ढंग से, न तार्किक ढंग से सोचता है और न ही पूर्ण वाक्य के रूप में अनुभव करता है। आदमी किन्हीं यादों के साहचर्य (association) के द्वारा सोचता है और व्यक्ति विशेष के रूप में ही अनुभव करता है। दूसरे शब्दों में ऐसा कहा जा सकता है कि साहित्यकार जब यथार्थ को अपने आप में समेटता है और उस यथार्थ को अपनी ओर से अभिव्यक्त देने का प्रयास करता है तब वह अपने अंतर में समाहित यथार्थ को विषय के केन्द्रबिंदु के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।

इस प्रकार के यथार्थ का संकेत इस उपन्यास में मिल जाता है। इसमें यथार्थ का जो चित्रण किया गया है, ऐसा लगता है कि उसका 1943 ई० के महायुद्धकालीन यथार्थ से कोई संबंध नहीं है। और शायद कुछ आलोचकों ने भी ऐसा सोचा हो कि द्विवेदी जी इस संकट के समय कैसी इधर-उधर की कथा

Scanned with CamScanner

सुना रहे हैं। या क्या यह सचमुच बाण भट्ट की आत्मकथा है ? और कुछ आलोचकों ने तो यहाँ तक कह दिया है कि यह एकदम बेकार गप है—अगर हम इस उपन्यास को ध्यान से पढ़ें तो द्विवेदी जी का जो विचार था और विचारने की जो प्रक्रिया थी, उसका अनुमान हम आसानी से लगा सकते हैं। हमारे विचार में शायद द्विवेदी जी ने ऐसा सोचा हो कि समाज में क्या हो रहा है, सो मैं क्या देख रहा हूँ ? ततः किम् ? (६) हाय हाय रे ये सारे वीभत्स दृश्य मुझसे नहीं देखे जाते। मुझे अनेक गुरुजनों की आत्मा की पुकारें सुनाई दे रही हैं। हम उनसे बहुत सीख सकते हैं। बाण भट्ट उस संक्रांति काल में कवि की दूरदर्शिता से संसार को देख रहे थे। उन्होंने क्या-क्या देखा हो, कैसा अनुभव किया हो और क्या-क्या सोचा हो ? इन प्रश्नों पर मैं क्या कहता अगर मैं उस समय के समाज में रह रहा होता ? क्योंकि मुझे इस महायुद्धकालीन समाज से बहुत कुछ कहना है..... । यही कारण है कि द्विवेदी जी ने तत्कालीन समाज का अप्रत्यक्ष रूप से चित्रण करने के लिए बाण के नाम 'गप' मारी।

उन्होंने 'आत्मकथा' के अभिनय प्रयोग के साथ इस उपन्यास का अद्भुत ढाँचा खड़ा किया है। उपन्यास के कथामुख में व्योमकेश शास्त्री उर्फ़ द्विवेदी जी ऐसा लिखते हैं जैसे 'दीदी' एक दिन शोणनद की यात्रा करके एक सामग्री लिए यहाँ (शायद शांतिनिकेतन हो) लौट आयीं। यही सामग्री 'बाण भट्ट की आत्मकथा' थी। दीदी ने उसका हिन्दी में अनुवाद किया और व्योमकेश शास्त्री ने फुट नोट में पुस्तकों के हवाले दिये—। केवल यही नहीं, अगर हम इस उपन्यास का 'उपसंहार' पढ़ें तो हमें ऐसा लगता है कि मानो 'दीदी' ने इस कथा को रचना की हो। इस प्रकार इस उपन्यास में कई प्रकार के कल्पनापूर्ण ढाँचे दिखाई देते हैं। (1) बाण भट्ट ने इस आत्मकथा को रचना की और दीदी ने उसका अनुवाद किया। (2) दीदी ने बाण भट्ट की आत्मा की पुकार सुनकर इस कथा की रचना की। (3) व्योमकेश शास्त्री और दीदी मानो उस समय के वास्तविक व्यक्ति हों।

यह उपन्यास उत्तमपुरुष में लिखा गया है। ऐसा लगता है मानो जैसे-जैसे घटनाएँ आगे बढ़ती जाती हैं वैसे-वैसे 'बाणभट्ट' उन्हें लिपिबद्ध करता जा रहा हो। जब भी 'बाण' के मन में किसी वस्तु के साहचर्य के द्वारा कोई याद आती है वह उन सबको लिख लेता है। द्विवेदी जी ने जानबूझ कर बाण की कथा आख्यायिका शैली में लिखी है ताकि पाठकों को ऐसा लगे कि 'आत्मकथा' बाणभट्ट ने सचमुच स्वयं लिखी हो। फलस्वरूप इस उपन्यास में तत्सम शब्दों का प्राधान्य, समास का बाहुल्य, बाण के चाक्षुष्य वस्तु संबंधी चित्रण के आधिक्य के समान प्रकृति, मुखाकृति और वस्त्रालंकार आदि का सविस्तार चित्रण आदि शैलीगत विशेषताएँ आ गई हैं। इसके अतिरिक्त तत्कालीन धार्मिक अनुष्ठानों और कई त्यौहारों का वर्णन भी सविस्तार किया गया है। कुछ आलोचकों का आरोप है कि उपर्युक्त शैली कथा के प्रवाह और शब्दार्थ की बोधगम्यता के लिए बाधक हो गई है। लेकिन प्रकृति चित्रण आदि के लिए संस्कृतनिष्ठ समास प्रधान शैली ; अघोर भैरव के संवाद के लिए फक्कड़ानी शैली ; महामाया, लोरिकदेव और विग्रह वर्मा के संवाद के लिए ओजस्विनी शैली ; आदि उपन्यास में विषयानुकूल शैलियाँ मिलती हैं। वास्तव में हर्षकालीन वातावरण का पुनर्निर्माण करने और इस रचना को बाणभट्ट की बायोग्राफ़ी का रूप देने के लिए इस प्रकार की शैली की आवश्यकता थी। इसलिए उपर्युक्त आरोप चाहे किसी हद तक सही भी हो, किन्तु पूर्ण रूप से सहमत नहीं हुआ जा सकता।

Scanned with CamScanner

इस उपन्यास में मुख्यकथा के बीच बीच कई यादें, कई प्रासंगिक कथाएं और [illegible] काव्यात्मक वर्णन कई जगहों पर सविस्तार दिया गया है। लेकिन ये याद रूपी कथाएँ 'बाण' के चेतना-पट पर सुव्यवस्थित रूप में पिरोयी हुई हैं। बाण के चेतना-पट पर जो भी बात उभरी, उसके द्वारा हम इस उपन्यास के मेरुदंड को देख सकते हैं।

इस उपन्यास में पात्रों की मनोवृत्ति भावुक के रूप में दिखाई देती है। पात्र यथार्थ की व्याख्या अपनी ओर से अपने आप करने का प्रयास कर रहे हैं और वे निरंतर बदली जानेवाली व्यवस्थाओं के प्रति ऐसे तत्वों एवं मूल्यों की खोज कर रहे हैं जो कम से कम हों लेकिन अत्यावश्यक हों। इनको निश्चित करना पाठकों का कार्य है। लेखक अपनी ओर से कोई निश्चित प्रस्ताव नहीं रखता। दूसरे शब्दों में ऐसा कहा जा सकता है कि लेखक ने इस पर अधिक बल नहीं दिया है कि पात्रों ने किस प्रकार व्यवहार किया ? लेकिन लेखक का ध्यान इसी बात पर हमेशा केंद्रित रहा है एक व्यक्ति यथार्थ की ओर किस प्रकार आकर्षित हुआ ? उसने किस प्रकार सोचा ? किस प्रकार दूसरे लोगों के विचारों को अपनाया ? लेखक के द्वारा चित्रित पात्रों का चारित्रिक विकास आन्तरिक उपकरणमूलक है अर्थात् लेखक ने अपने पात्रों के चरित्र का विकास पात्र के भीतर के स्वाभाविक अंकुर के विशेष गुण को नियमित्त बना कर किया है(7)। इसलिए हम पात्रों के व्यक्तित्व या विचार की स्थापन-प्रक्रिया को स्पष्ट देख सकते हैं।

लेखक ने जिन पात्रों का निर्माण किया है उनमें से निपुणिका, महामाया और अघोर भैरव का चरित्र-चित्रण सब से अधिक चित्ताकर्षक प्रतीत होता है। निपुणिका और उसके प्रेम को आध्यात्मिकता की ओर ऊँचा उठाने के प्रयास में काव्यात्मक सत्य का बोध होता है। उसका मृत्यु पर्यन्त चारित्रिक विकास स्वाभाविक रूप से हुआ है। इसलिए पाठक उससे आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकता।

महामाया की मनोव्यथा स्वयं शक्तिस्वरूपा है। अपनी लंबी तपस्या-साधना के बावजूद वह माया से मुक्त नहीं है और अपने अतीत से भी मुक्त नहीं है। लेकिन जो उसने जनता के समीप जाकर जन-शक्ति के संगठन को अपील की वह उसकी मनोव्यथा का प्रतिफल है। जब उसने अपनी मनोव्यथा के साथ अपने आप को जनता-रूपी नर-देवता के चरणों पर समर्पित किया तब वह महामाया स्वरूपा दिखाई देती है।

अघोर भैरव के चरित्र-चित्रण में चारित्रिक विकास अधिक नहीं दिखाया गया लेकिन अपने विशिष्ट व्यक्तित्व के कारण उसका चित्र पाठकों के सामने उभर कर आता है। उपर्युक्त तीन पात्रों की तुलना में बाण भट्ट का चरित्र-चित्रण इतना सशक्त नहीं हुआ है। अगर निष्पक्ष भाव से देखा जाये तो उसकी भूमिका एक नाटक के सूत्रधार के रूप में रह गयी है।

प्रश्न उठता है कि इस उपन्यास को किस प्रकार का उपन्यास माना जाये ? इस उपन्यास की कथा का समय हर्ष के शासनकाल का है तथा इस उपन्यास के पात्रों का अधिकतर संबंध ऐतिहासिक परिस्थितियों से है। इसलिए इस उपन्यास का ऐतिहासिक उपन्यास कहा जा सकता है। लेकिन इस उपन्यास में इतिहास सम्मत पात्रों और ऐतिहासिक तथ्यों की अपेक्षा लेखक की कल्पना अधिक दिखाई देती है। लेखक ने ऐतिहासिकता के आंचल में कल्पना को उड़ेल कर उसे मनोहर रूप प्रदान किया है।

Scanned with CamScanner

कल्पना के प्राबल्य के कारण इस उपन्यास को रोमांस भी कहा जा सकता है (8)। अत: 'बाण भट्ट की आत्मकथा' को एक 'ऐतिहासिक रोमांस' कहा जा सकता है।

इस प्रकार इतिहास एवं मिथक, यथार्थ एवं कल्पना, पाण्डित्य एवं कवित्व और शब्द एवं अर्थ का सुन्दर संयोजन इस उपन्यास में दिखाई देता है। इस उपन्यास में द्विवेदी जी ने साहचर्य द्वारा प्रतिपादित स्मरणों के अंतर्ग्रथन कर मूल्यों का जो संघर्ष दिखाया है, वह कल्पना को नई स्फूर्ति और शक्ति देने में समर्थ है। उन्होंने बिखरे हुए सूत्रों का ताल-मेल जिस कुशलता से बिठाया है, वह उनके सुप्त कवित्व के भाव तंत्र का अंग बना है, न कि कलाकार का सतर्क चमत्कार है।

ऐतिहासिक प्रमाणिकता

उपन्यास में देश-काल का महत्वपूर्ण स्थान है। विशेषकर जब किसी उपन्यास का काल आधुनिक काल से अन्य कालों में लिया गया हो तब उस उपन्यास में लिये गये काल-स्थापन का औचित्य मूल्यांकन की एक कसौटी बन जाता है। लेकिन जहाँ तक 'बाण भट्ट की आत्मकथा' में देश-काल का सवाल है वहाँ अपने रोमांस-तत्व के आधिक्य के कारण यह उपन्यास शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास की लीक से बाहर आ गया है। पात्रों का चरित्र-चित्रण, उनकी बातचीत, उनके वस्त्रालंकार, धार्मिक-सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियाँ आदि सभी देख कर हमें ऐसा लगता है मानो बाण ने आत्मकथा की रचना स्वयं की हो। इसे द्विवेदी जी के पण्डित्य और सृजनशक्ति का चमत्कार ही कहा जा सकता है।

वैसे तो उपन्यास में कथा का मूल ढाँचा इतिहास-सिद्ध होते हुए भी कल्पनात्मकता के लिए विशिष्ट स्थान रखता है, नहीं तो उपन्यास इतिहास-शास्त्र का एक अंग ही बन जाएगा। लेकिन अगर उपन्यास कोई भी ऐसी बात लिखे जो उस जमाने में संभव नहीं थी, तो बात खटक जायेगी और सहृदय पाठक को रसास्वादन में बाधा खड़ी होगी (9)। इसलिए यह कहा जा सकता है कि उपन्यास को उतनी ही ऐतिहासिकता चाहिए जिससे पाठकों के मन में वास्तविकता का बोध कराया जा सके। इस उपन्यास में सिद्ध व्यक्तियों की भविष्यवाणी, सम्मोहन के द्वारा भविष्य को दिखाना आदि कई चमत्कारों का वर्णन भी किया गया है। ये बातें आधुनिक युग के पाठकों के लिए अलौकिक एवं अविश्वसनीय हैं। लेकिन इनका वर्णन हर्ष-युग के वातावरण को पैदा करने के लिए एक तरह का आवश्यक दोष है जिसे कवि-समय या कवि-प्रसिद्धि कहते हैं।

(क) कथा-काल का विश्लेषण

इस उपन्यास में कथा-काल महाकवि बाण भट्ट के जीवन काल में लिया गया है। बाण भट्ट राजा हर्ष वर्धन का राजकवि था। उसने 'हर्ष चरित' में हर्ष वर्धन के चरित्र का वर्णन करने के साथ अपना परिचय भी दिया है(10)। इतिहास-शास्त्र की दृष्टि में जो तथ्य प्रमाणित माने गये हैं उनमें से इस उपन्यास से संबंधित तथ्य निम्नलिखित हैं।

(1) हर्ष का जन्म 590 ई० में हुआ।

Scanned with CamScanner

(2) हर्ष के एक भाई और एक बहन थे। जब उसकी बहन राज्यश्री का जन्म हुआ तब हर्ष की उम्र मुश्किल से दो साल और हर्ष के बड़े भाई राज्यवर्धन की उम्र छः साल की थी (11)।

(3) 605 ई०—हर्ष के पिता प्रभाकर वर्धन की मृत्यु हुई। थोड़े समय के बाद राज्यश्री के पति ग्रहवर्मन का मालवराज के द्वारा वध हो गया। (12) इसके बाद कान्यकुब्ज में राज्यश्री को बंदी किया गया।(13)

(4) 606 ई०—राज्यवर्धन ने मालवराज की सेना को हराया, लेकिन गौडाधिपति (14) के द्वारा उसका वध हुआ। इतने में 'गुप्त नाम के किसी व्यक्ति ने कुरास्थब (कान्यकुब्ज) को अपने अधिकार में कर लिया (15) अवसर पाकर राज्य श्री विन्ध्याचल की ओर भाग गई (16) शीघ्रतः हर्ष ने उसका उद्धार किया। (17)

(5) 612 ई०—हर्ष को महाराजाधिराज की उपाधि मिली। (18) इससे पता चलता है कि इस समय तक हर्ष ने दुआब के सारे क्षेत्र को अपने वश में कर लिया था।

(6) 619 ई० तक शशांक का राज्य बंगाल में समृद्ध था। (19)

इस उपन्यास में जो काल संबंधी वर्णन किये गए हैं उनमें से इस उपन्यास के मेरुदंड से संबंधित उल्लेखों में निम्नलिखित बातें महत्वपूर्ण हैं।

(1) 'कान्यकुब्जेश्वर का यही इस समय तक का पूर्वी दुर्ग है। इस के बाद के देशों में अराजकता है।' (पृ० 131) इससे पता चलता है कि यह कथा हर्ष के बंगाल को अपनाने से पहले की बात है।

(2) इस उपन्यास में किसी साल के ज्येष्ठ मास में एक पात्र के द्वारा यह बताया गया है कि उससे 15 साल पहले तक राज्यश्री का विवाह ग्रहवर्मन से नहीं हुआ था। (पृ० 286)

(3) उपर्युक्त '15 साल पहले' की बात में योगी के मुँह से यह सुनाया जाता है कि ग्रहवर्मन शीघ्र ही दूसरी शादी करेगा और उसका जीवन अब लंबे समय तक नहीं रहेगा। (पृ० 292) दूसरी जगह इस भविष्यवाणी के सिद्ध हो जाने का संकेत है।

उपन्यास में दिए गए संकेतों के साथ उपर्युक्त ऐतिहासिक तथ्यों की तुलना करके निम्नांकित तालिका दी गई है :

Scanned with CamScanner

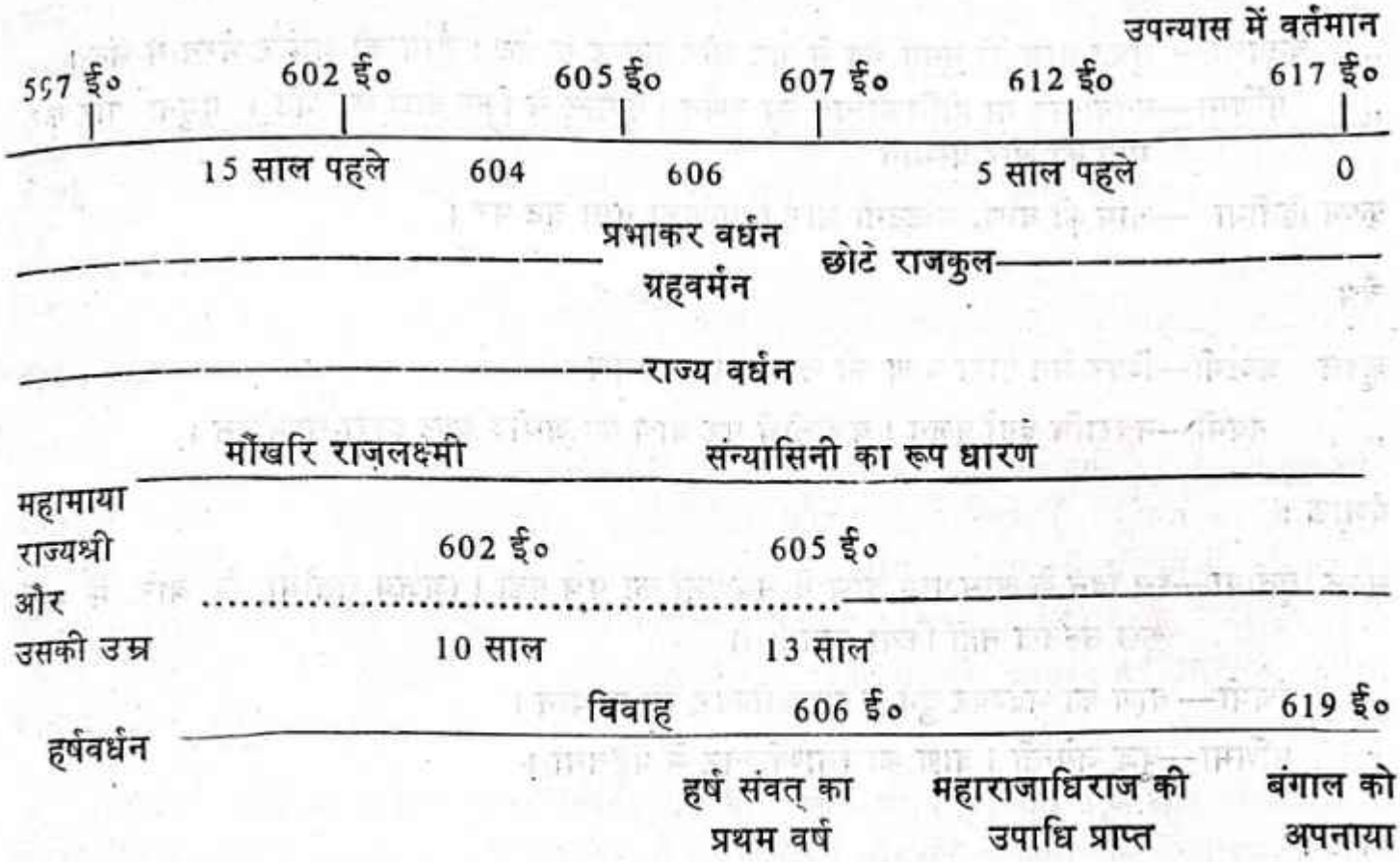

इतिहास-शास्त्र के क्षेत्र में राज्यश्री के विवाह की तिथि स्पष्ट नहीं है। लेकिन 'हर्ष चरित' में ये वर्णन मिलते हैं कि यह विवाह अपने पिता प्रभाकर वर्धन की मृत्यु से पहले हुआ था और उस समय उसको यौवन प्राप्त हो चुका था (20)। इसलिए राज्यश्री का विवाह प्राय: 602 ई० से 605 ई० के बीच में हुआ होना चाहिये। इस उपन्यास का ढाँचा हमारे इस अनुमान से भी नहीं टकराता। उपन्यास में छोटे राजकुल के बने 5 साल होने का संकेत मिलता है। अगर 617 ई० को इस उपन्यास का कथाकाल माना जाये तो यह 612 ई० में हर्ष के दुआब में अपनी पक्की सत्ता रखने के तथ्य के प्रति भी वास्तविकता का बोध देता है।

उपर्युक्त विश्लेषण के द्वारा हमें यह जान पड़ता है कि इस उपन्यास का मूल ढाँचा कथाकाल के संदर्भ में बिलकुल इतिहास-सम्मत कहा जा सकता है।

उपर्युक्त विश्लेषण के अतिरिक्त इस उपन्यास में जिन त्योहारों के वर्णन किए गए हैं, उनके आधार पर इस उपन्यास का कथाकाल संबंधी अधिकतर विश्लेषण किया जा सकता है।

फाल्गुन :

शुक्ल त्रयोदशी—बाण का स्थाण्वीश्वर में पहुँचना। मध्यरात्रि भट्टिनी का उद्धार। मदन-पूजा वर्णन। दूसरे सवेरे तक निपुणिका के घर जाकर सामान लेकर चंडी-मंदिर में शरणार्थ घुस बैठना।

Scanned with CamScanner

,, चतुर्दशी— सुबह बाण की सुगत भद्र से भेंट और कुमार से भेंट। शाम को अघोर भैरव से भेंट।

,, पूर्णिमा—मदनोत्सव या होलिकोत्सव का वर्णन। कुमार से फिर बाण की भेंट। यमुना पार कर गंगा की ओर प्रस्थान

कृष्ण द्वितीया —शाम को बाण, भट्टिनी और निपुणिका गगा तट पर।

चैत्र

शुक्ल अष्टमी—श्विर सेन द्वारा बाण की नात्र पर आक्रमण।

,, नवमी—नवरात्रि दुर्गा पूजन। वज्रतीर्थ पर बाण को अघोर घण्ट द्वारा सम्मोहन।

वैशाख :

शुक्ल तृतीया—इस दिन के आस पास बाण ने भर्वुशर्मा का पत्र पढ़ा। (अक्षय तृतोया के बारे में यहां कुछ उल्लेख नहीं किया गया है।)

,, पंचमी— बाण का भद्रेश्वर दुर्ग से स्थाण्वीश्वर को प्रस्थान।

,, पूर्णिमा—बुद्ध जयंन्ती। बाण का स्थाण्वीश्वर में पहुँचना।

ज्येष्ठ :

शुक्ल द्वितीया—इस दिन के आस पास बाण का भद्रेश्वर में लौट आना।

,, दशमी—गंगा दशहरा। बाण, भट्टिनी और निपुणिका का लारिक देव के मल्लों के साथ स्थाण्वीश्वर को प्रस्थान।

इस ज्येष्ठ दशमी के वर्णन के बाद कथा-काल के बारे में स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है बाण को स्त्रियों को लेकर दस हजार मल्लों के साथ भद्रेश्वर से स्थाण्वीश्वर तक जाने में काफ़ी समय लगा होगा, क्योंकि बाण ने जब अकेले इस रास्ते की यात्रा की तब उसे 10 दिन लगे हैं। उन लोगों के स्थाण्वीश्वर पहुँचने के कई दिन बाद उड्डुपति भट्ट आ जाता है और निपुणिका की मृत्यु के बाद श्राद्ध (21) के अंतिम दिन तक का वर्णन इस उपन्यास में मिलता है। अतः इस उपन्यास की अंतिम तिथि प्रायः आषाढ़ के अंत कुछ दिनों तक मानो जा सकती है।

कथा-काल के संबंध में इस उपन्यास में दो स्थानों पर अनुचित वर्णन किये गये हैं। एक, जिस दिन बाण की तबीयत ठीक हो गयी वह रात हमारे विश्लेषण के अनुसार वैशाख शुल्क तृतीया के आस पास होनी चाहिए। लेकिन इस उपन्यास में लेखक ने अँधेरी रात के वर्णन के विपरीत ऐसा वर्णन किया मानो उस रात को पूर्णिमा चंद्र निकला हो (पृ० 165)। दूसरी बात यह है कि शुल्क नवमी की जिस रात को बाण को अघोर घण्ट के द्वारा सम्मोहन लगाया गया उस रात से वैशाख पंचमी तक के लगभग 24 दिनों का वर्णन स्पष्ट नहीं है। इस अवधि के लिए सिर्फ़ 'तीन दिन और तीन रात तक मैं सज्ञाहीन पड़ा रहा (पृ० 152) और 'तीन दिन बाद मैं पूर्ण स्वस्थ हो गया' (पृ० 157) के दो विवरण ही मिलते हैं। इन दो

Scanned with CamScanner

जगहों को छोड़कर वाकी वर्णन त्योहार आदि के सशक्त वर्णनों के द्वारा स्पष्ट किये गये हैं और कथा का प्रवाह भी स्पष्ट है।

अत: उपर्युक्त दो विश्लेषणों के द्वारा यह निष्कर्ष निकलता है कि इस उपन्यास का जो कथा-काल है वह 617 ई० के फाल्गुन तृतीया से लेकर आषाढ़ तक लगभग साढ़े चार महीने का है।

(ख) कथा भूमि विचार

इस उपन्यास में जिन स्थानों का उल्लेख है उनमें से स्थाण्वीश्वर (थानेसर) और भद्रेश्वर-दुर्ग को विशेष महत्व दिया गया है।

स्थाण्वीश्वर : यहाँ निम्नलिखित कथा-कल्प परिस्थितियाँ खड़ी कर दी गयी हैं। (1) श्री हर्ष और कुमार कृष्ण के महल, सौगतों का विहार, चण्डी मंदिर और छोटे राजकुल (मौखरियों का अन्त:पुर) आदि यहाँ मौजूद हैं। (2) यहाँ ऐसी घटनाएँ हुई—(क) छः साल के बाद निपुणिका और बाण का पुनर्मिलन (ख) भट्टिनी का उद्धार (ग) महामाया की जनता के प्रति अपील (घ) अनेक धर्मों का प्रचार (च) उड्डपति भट्ट और वसुभूति के बीच शास्त्रार्थ (छ) रत्नावली का रंगभूमि पर उतरना (ज) बाण की हर्षवर्धन से भेंट।

भद्रेश्वर : भद्रेश्वर आभीर सामंत लोरिक देव का निवास स्थान है। यहीं बाण और दो स्त्रियों को लोरिक देव की शरण मिलती है। इस उपन्यास में भद्रेश्वर दुर्ग और उस के आस पास के सौरभह्रद आदि स्थानों की महत्वपूर्ण भूमिका दी गयी है, हालाँकि इन स्थानों की कथा-कल्प घटनाएँ ऐतिहासिक दृष्टि में प्रमाणिक नहीं हैं।

इन दो स्थानों के अतिरिक्त अनेक स्थानों का नाम मात्र का उल्लेख मिलता है—(1) अस्त्रिय वर्ष जहाँ भट्टिनी का जन्म स्थान होने का संकेत दिया गया है (2) तक्षशिला (3) नगर हार (4) जालंधर (5) पुरुषपुर जहाँ देवपुत्र तुवर मिलिन्द का निवास स्थान होने का संकेत दिया गया है (6) कुलूतराज (कांगड़ा, पंजाब) घाटी का पहाड़ी स्थान) (7) प्रयाग (8) चरणाद्रि-दुर्ग (9) चित्रकूट (10) धूम्रगिरि (22) (11) महासरयू (घाघरा) नदी (12) गंगा नदी (13) तमसा नदी (14) श्री पर्वत (नागरजुनीकोंड (23) (15) कान्यकुब्ज

इस उपन्यास की कथाभूमि के संदर्भ में कुछ बातों पर सोचना आवश्यक प्रतीत होता है। इस उपन्यास में स्थाण्वीश्वर की अपेक्षा कान्यकुब्ज का महत्व कम जान पड़ता है। इतिहास की दृष्टि में यह थोड़ा-सा विचित्र लगता है। शायद लेखक ने ऐतिहासिक प्रामाणिकता की उलझनों से बचने के लिए ऐसी कथा-कल्प परिस्थितियाँ बनायी हों या लेखक ने जिन पुस्तकों का सहारा लिया, उनमें स्थाण्वीश्वर का वर्णन अधिक मिला हो। इस उपन्यास में भद्रेश्वर दुर्ग की महत्वपूर्ण भूमिका दी गयी है हालाँकि इतिहास की दृष्टि में इसका इतना महत्व नहीं है। लेखक ने उपसंहार में ऐसा संकेत पहेली की तरह दिया है कि 'भद्रेश्वर-दुर्ग और उसके समीपवर्ती स्थानों का अधिक वर्णन है, जो काफ़ी संकेत पूर्ण है।' भद्रेश्वर नामक स्थान कलकत्ता के हावड़ा स्टेशन से लगभग 29 कि०मी० की दूरी पर है। लेकिन इस

Scanned with CamScanner

उपन्यास में बंगाल का कोई उल्लेख नहीं मिला। इस बारे में यह अनुमान लगाया जा सकता है कि भद्रेश्वर-दुर्ग छपरा के पास होना चाहिए। इसकी युक्ति निम्नलिखित है। (1) बाण और उसके साथियों पर तमसा नदी को छोड़ने के बाद ईश्वर सेन का आक्रमण हआ और जिस स्थान पर बाण और भट्टिनी पहुँचे, उस स्थान के नज़दीक ही वज्रतीर्थ है (पृ० 134)। (2) उपन्यास के अनुसार वज्रतीर्थ गंगा और महासरयू (घाघरा) नदी के संगम पर है (पृ० 146)। (3) भद्रेश्वर वज्रतीर्थ के प्रति महासरयू के उस पार है (-वही-)।

अगर लेखक साधारण ऐतिहासिक उपन्यासकार होता तो जिस स्थान पर बाण शरण पाने के लिए गया था उस स्थान के लिए लेखक ने बाण की जन्मभूमि प्रीतिकूट को ही चुना होता। प्रीतिकूट वर्तमान पटना या शहाबाद के आस पास स्थित है। लेकिन 'बाण भट्ट की आत्मकथा' के लेखक ने क्यों कथा में महत्वपूर्ण स्थान के लिए भद्रेश्वर-दुर्ग को ही चुना था ?

हमें इस बात को याद करना होगा कि लेखक हज़ारा प्रसाद द्विवेदी का जन्म उपर्युक्त क्षेत्र में ही हुआ था। तमसा नदी उन की जन्मभूमि 'ओझवलिया' के पास गंगा में मिल जाती है। द्विवेदी जी ने अपने निबंध में ऐसा लिखा है—'मेरा विचार यह है कि इतिहास का साहित्य कुछ बड़े-बड़े व्यक्तियों के उद्भव और विलय के लेखे-जोखे का नाम नहीं है। वह जीवन—मनुष्य के धारावाहिक जीवन के सार-भूत रस का प्रवाह है। मेरे गाँव में जो जातियाँ बसी हैं वे किसी उजड़े महल या गाड़ी हुई ईंटों से कम महत्वपूर्ण हैं ही नहीं, अधिक महत्वपूर्ण हैं। मेरे इस छोटे-से गाँव में भारतवर्ष का बहुत बड़ा सांस्कृतिक इतिहास पढ़ा जा सकता है। (24)

हमारे विचार में लेखक ने अपने ऐतिहासिक उपन्यास में एक ऐसे गाँव का उल्लेख किया है जिससे इतिहास का जीवन्त दर्शन किया जा सके। वास्तव में लेखक ने उपन्यास में अपने गाँव का चित्रण किया है। इस चित्रण में उसकी विनोदप्रियता के दर्शन होते हैं।

(ग) वातावरण

(1) राजनीतिक परिस्थितियाँ :—लेखक ने राजनीतिक परिस्थितियों का उल्लेख व्यौरे से नहीं किया है। यद्यपि लेखक ने राजनीतिक परिस्थितियों का सीधा वर्णन नहीं किया है तथापि उसने पत्र, लोक-श्रुति और कुछ राजाओं के स्तुति वर्णन आदि के द्वारा अच्छी तरह राजनीतिक परिस्थितियों का संकेत दिया है।

गुप्त राजाओं की अवनति के साथ साथ उत्तर भारत की राजनीतिक व्यवस्था विशृंखल हो गयी थी। छोटे-मोटे राजा आपस में लड़ते रहे। इस समय आर्यावर्त पर पश्चिमो ओर से हूणों का लगातार आक्रमण होता रहा। गुप्तों की अवनति का कारण भी हूण का आक्रमण ही कहा जाता है।

लगभग छठी शताब्दी के अंतिम दशकों से 7 वीं शताब्दी के प्रथम दशक तक आर्यावर्त में मुख्य चार राज्य थे। मगध में छोटा गुप्त राजवंश था जो बाद में मालवा भूभाग तक फैल गया और ऐसा कहा जाता है कि उस वंश के मालव राज ने ग्रहवर्मन का वध किया। कन्नौज में मौखरि वंश था।

Scanned with CamScanner

थानेसर में पुष्पभूति वंश था जिसे हर्ष वंश भी कहते हैं। एक अन्य मैत्रेक वंश भी था जिसकी राजधानी वलभी में थी।

इस उपन्यास में मौखरि वंश और कान्यकुब्जेश्वर अर्थात हर्षवर्धन के राज्य का अधिक उल्लेख है। 'हर्ष चरित' के वर्णन के अनुसार निम्नलिखित घटनाओं का अनुमान होता है। (1) हर्ष की छोटी बहन राज्यश्री का विवाह मौखरि नरेश ग्रहवर्मन से हुआ था। (2) मालवराज ने ग्रहवर्मन का वध करके रानी राज्यश्री को कैद किया। (3) हर्ष के बड़े भाई राज्यवर्धन ने मालव राज की सेना को हराया' लेकिन गौडाधिपति के छल से उसका वध किया गया (4) इतने में किसी गुप्त नाम के व्यक्ति ने कुशस्थल (कान्यकुब्ज) पर अधिकार कर लिया और अवसर पाकर रानी राज्यश्री बंधन से छूट कर अपने परिवार के साथ विन्ध्याचल के जंगल में चली गयी। (5) हर्ष ने शीघ्रतया उस का उद्धार किया।

लेकिन इस उपन्यास में उपर्युक्त घटनाओं का उल्लेख नहीं है। इसके प्रति लेखक ने छोटे महाराज का काल्पनिक निर्माण किया। 'जब से महाराजाधिराज हर्षवर्धन ने अपने बहनोई (ग्रहवर्मन) का राज्य भी अपनी ही छत्रच्छाया में ले लिया है, तब से उक्त बहनोई के एक दूर के संबंधी को—जो मौखरि सिंहासन का उत्तराधिकारी हो सकता था—इस नगर (स्थाण्वीश्वर) में आश्रय मिला है। इधर की जनता में अब भी मौखरि वंश के प्रति प्रबल सम्मान भाव वर्तमान है (पृ० 28)।' इन मौखरियों को कोई अधिकार नहीं दिया गया था, पर सम्पत्ति दी गयी थी। 'इसलिए उसमें अनुत्तरदायी भोग-लिप्सा बढ़ गयी है, जो अब अत्यंत निकृष्ट आचार का रूप धारण कर चुकी है। महाराजधिराज को यह बात मालूम है, पर जनता में अब भी मौखरि-वंश का मान है, इसलिए साहसपूर्वक वे इस छोटे महाराज को हटा नहीं सकते (पृ० 28)।'

इस उपन्यास में इन मौखरियों के अतिरिक्त आर्यवर्त में दो और प्रभावशाली राजवंश की कल्पना लेखक ने की है। एक तो देव पुत्र तुवर मिलिन्द है और दूसरा लोरिक देव है। मिलिन्द एक यवन राजा है जो कि उस का मूल राज्य रोमक-पत्तन के उत्तरावर्त में स्थित अस्त्रियवर्ष में था। वह भट्टिनी का पिता है। इस उपन्यास में उसे पुरुषपुर में रहने वाले आर्यावर्त के प्रहरी की भूमिका दी गयी है जो सब से शक्तिशाली राजा है। जब उसकी कन्या चंद्रदीधिति गुम हो गई तो वह उस के शोक के कारण निरुत्साहित हो गया है।

लोरिक देव एक आभीर सामंत है। हमारा अनुमान है कि लेखक ने लोरिकदेव का नाम शायद सुप्रसिद्ध लोक-गाथा लोरिकायन (25) के नायक के नाम से लिया हो (26) इस उपन्यास में लेखक ने लोरिकदेव के सहज स्वभाव और उसके राज्य के जाति-भेद रहित समाज को लेकर इस आभीर सामंत लोरिकदेव और राज्य को महत्व दिया है।

इस उपन्यास में लिये गये युग के आर्यावर्त में कोई राजनीतिक एकता नहीं थी। इस समय तक हर्ष का शासन भी अभी स्थिर नहीं हुआ था। इन स्थितियों में लेखक हूणों के आतंक का वातावरण लाया है जब कि यह घटना इतिहास शास्त्र की दृष्टि में इतनी प्रामाणिक नहीं है (27)। लेकिन इस प्रकार की घटनाओं की सम्भावना तो अवश्य थी। लेखक ने 'अत्यंत घृणित म्लेच्छ जाति' या 'प्रत्यंत

Scanned with CamScanner

दस्यु' आदि शब्दों को 'रघुवंश' (28) से उद्धृत कर के आतंक का आंतरजन किया है जिससे लेखक वातावरण का तनाव उपन्यास में लाने में सफल हुआ है। केवल यही नहीं, लेखक भट्टिनी के द्वारा दिये गये संदेश 'रागात्मक हृदय' का महत्व बढ़ाने में भी सफल हुआ है।

(2) सामाजिक-धार्मिक स्थितियाँ :—हर्ष काल एक ऐसा काल था जो समाज के सभी तत्वों में परिवर्तन हो रहा था। एक ओर अनेक तत्वों का निश्रण हो रहा था, तो दूसरी ओर एक तत्व अनेक रूपों में बँटता जा रहा था। भारत के सांस्कृतिक इतिहास के संदर्भ में यह काल द्विवेदी जी की दृष्टि में विशेष अर्थ रखता है। उनका कहना यह है कि भारत एक बहुजातीय देश है। वर्तमान भारत की जो भी मौलिक जातियाँ हैं वे सब इस युग तक यहाँ आ बसी थीं। इसलिए भारत को निरन्तर भिन्न-भिन्न संस्कृतियों और भिन्न-भिन्न विचारों के संघर्ष में आना पड़ा। राजनीति में विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया चल रही थी जब कि हर्ष ने साम्राज्य बनाने का अंतिम प्रयास किया था। एक ओर धर्म के क्षेत्र में वेद लोक-चिन्तन पर अधिक प्रभाव अभी नहीं डाल सके थे, दूसरी ओर गाँव-गाँव की असभ्य धर्म-चेतना वेद के देवताओं के संपर्क में अपना अभिव्यक्त रूप धारण करने लगी थी। इस प्रक्रिया में बौद्ध-तन्त्र का योगदान माना जा सकता है। बाद में इस धर्म-चेतना का रूप अपने आप लोक-चिंतन में मिलकर अप्रत्यक्ष हो गया। समाज छोटी-छोटी इकाइयों में टुकड़े-टुकड़े होता जा रहा था। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि उस समय जो अनेक नवागंतुक जातियों के बीच में पारस्परिक संघर्ष या घिस्सा था, जो विभिन्न धार्मिक मान्यताएँ विश्रृंखल रूप में था, जो तत्व देशी या विदेशी थे, वे सभी भारतवर्ष के संश्लेषण की ओर, नये मूल्य के आधार पर नयी व्यवस्था की ओर बढ़ते जा रहे थे, हालाँकि उनकी गति मंद ही थी कि मानो लोग अंधेरे में कुछ टटोल रहे हों और आपस में टकराते-झगड़ते हों।

इस युग में राजाओं की ऐसी प्रवृत्तियाँ थीं जो वे बिना निजी तत्व खोजने का कोई प्रयास किये गुप्तकालीन वैभव और मान्यताओं का अनुसरण करना चाहते थे। जहाँ वैभव की यादें हैं और उनका सपना देखते रहने की इच्छा प्रबल है, जहाँ ऐसी मान्यता को स्थिर बनाने की वृथा चेष्टा है जो मान्यता तत्कालीन समाज में उचित नहीं है, और जहाँ सुगठित रूप में पक्की व्यवस्था स्थापित नहीं है, वहाँ लोगों के चरित्रों में विभिन्नता, विश्रृंखलता और अतिवादिता की प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। लेखक ने इस प्रकार के वातावरण का चित्रण सशक्त शब्दों में किया है। लेखक ने विदेशी कन्या भट्टिनी के मुँह से यह सुनवाया है—'.....आर्यावर्त जैसी विचित्र व्यवस्था मैंने कहीं नहीं देखी है। यहाँ इतना स्तर भेद है कि मुझे आश्चर्य है कि यहाँ के लोग कैसे जीते हैं। फिर यहाँ एक से बढ़ कर एक ऐसे सत्पुरुष और सती स्त्रियाँ देखी हैं कि मुझे कभी-कभी यह भी आश्चर्य होता है कि ये देवता के समान लोग क्यों मर जाते हैं? यहाँ का जीवन और मृत्यु दोनों ही मेरे लिए पहेली हैं!'

लेखक ने इस प्रकार के समाज की दयनीय अवस्था को दिखाने के लिए प्रतीकात्मक ढंग से नारी की दुर्दशा को सामने रखा है। 'इस उत्तरापथ में लाख-लाख निरीह बहुओं और बेटियों के अपहरण और विक्रय का व्यवसाय' चल रहा था। इस उपन्यास की मुख्य नायिका भट्टिनी और महामाया भी अपहृताएँ हैं। विधवा का अपमान उस समय तक निष्ठुर रूप धारण करने लगा था। इसका आभास सुचरिता और निपुणिका के संबंध में मिलता है। महामाया को अपने प्रेम और सत्य की सिद्धि के लिए संन्यासिनी

Scanned with CamScanner

का रूप धारण करना पड़ा था। उसे समाज से त्याग करने पर ही जीने का अस्तित्व मिला था, यद्यपि साधारण स्थिति में समाज ही आदमी का शरणदाता होता है। सुचरिता भी इस टाइप की नायिकाओं में से है। सारांश यह है उस युग में संन्यासिनो, नर्तको, गणिका जैसी स्त्रियाँ ही स्वतंत्र रूप में जी सकती थीं और स्त्री पतित होने का कलंक पाकर ही या समाज से त्याग करके ही मनुष्य युक्त स्वतंत्र जीवन बिता सकती थीं।

उपर्युक्त सामाजिक परिस्थितियों के अतिरिक्त इस उपन्यास में विभिन्न धर्मों और दार्शनिक मतों का परिचय दिया गया है। लेखक ने अपने गभीर तथा विशाल पाण्डित्य का जो उपयोग किया है वह अच्छा बन पड़ा है।

इस उपन्यास में जिस मत पर सबसे अधिक बल दिया गया है, वह अघोर भैरव का है। अघोर भैरव एक कौलाचार्य है अर्थात् वाममार्गी तांत्रिक। वह कई जगहों पर अवधूतपाद के नाम से संबोधित किया जाता है। अघोर भैरव की धर्म-साधना को नाथ-सम्प्रदाय का आदि रूप माना जा सकता है। दूसरा सुगत भद्र के बौद्ध धर्म का परिचय भी अधिक दिया गया है। उस का मत बौद्ध-दर्शन के 'माध्यमिक' या 'शून्यवाद' से तुलनोय है। लेकिन उस मत की पुष्टि के लिए लेखक ने असंघ और मिलिन्द प्रश्न से कुछ उद्धरण दिये हैं। असंघ विज्ञानवादी है और मिलिन्द प्रश्न की रचना लगभग ई० पू० दूसरी शताब्दी की है जो यवन राजा 'मेनान्द्रोस' और आचार्य 'नागसेन' के प्रश्नोत्तर का संग्रह है।

उपर्युक्त दो मतों के अतिरिक्त कई धर्मों का उल्लेख किया गया है। वसुभूति का धर्म उत्तरकालीन 'विज्ञानवाद' से तुलनोय है जिस में तर्क की प्रधानता थो। अघोर घण्ट का नाम भवभूति कृत 'मालतो माधव' में भी दिखाई देता है। उसका धर्म अघोरपंथ या कापालिक कहलाता है। कापालिक अति वाममार्गी शैव तांत्रिक था जो नर-बलि भी किया करता था और श्मशान में रहकर वीभत्स रीति से शंवतन्त्र की उपासना करता था। वेंकटेशभट्ट का धर्म वैष्णव मत और चण्डमुण्डना इस मत की साधिका है शैवतंत्र का मिश्रित रूप है। उसकी शिष्या सुचरिता के घर में वासुदेव की जो मूर्ति है उसके अंतिम यंत्र पर काम-गायत्री भो लिखो हुई है। भट्टिनो और निपुणिका महावराह की भक्त हैं। यह भक्ति-साधना और वेंकटेश भट्ट की धर्म-साधना बाद को 16 वीं शताब्दो की भक्ति-साधना का आदि रूप जान पड़ती है। इसमें सनातन धर्म के बारे में अधिक विवेचन नहीं मिलता।

औपन्यासिक संरचना का विश्लेषण

जैसा पहले कहा जा चुका है कि यह रचना न तो बाण भट्ट की स्वयं लिखित जीवनी है और न ही लेखक का उद्देश्य बाणभट्ट के जन्म से मृत्यु तक की जीवनी प्रस्तुत करना है। यह बाण भट्ट की आत्मा की कथा है जो वास्तव में द्विवेदी जी की आत्मा की पुकार है।

लेखक ने 'आत्मकथा' का अभिनव प्रयोग करके एक ऐसी वर्णन-पद्धति की स्थापना की है जिससे लेखक पात्रों के मानसिक परिवर्तन और विकास का सशक्त चित्रण कर सका है और इतिहास, समाज

Scanned with CamScanner

तथा व्यक्तिगत जीवन संबंधी अनेक समस्याओं को भी अच्छी तरह पाठकों के सामने प्रस्तुत कर सका है। लेकिन यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और व्यक्तिगत जीवन संबंधी सभी समस्याओं को लेखक ने एक व्यक्ति के वीरतापूर्ण चरित्र या रोचक घटनाओं के द्वारा प्रस्तुत नहीं किया है। लेखक ने पात्रों के अंतःसंघर्ष में से इन समस्याओं की एक झलक देने का प्रयास किया है। वैसे तो लेखक ने अन्य आधुनिक उपन्यासों के समान राज्य-व्यवस्था, समाज-व्यवस्था और मान्यताओं को अपरिवर्तनीय नहीं समझा है। इसलिए लेखक ने न तो आदर्शपुरुष का प्रदर्शन किया है, न चिरंजीवी व्यवस्था का संकेत दिया है। इसका परिणाम एक तो लेखक के दृष्टिकोण की विशेषता के रूप में प्रकट हुआ है। लेखक प्रश्न यह है—इतिहास का निर्माता कौन है? मनुष्य के अपने अस्तित्व का आधार क्या है? समाज-व्यवस्था मानवता से कहाँ टकरा रही है? दूसरा परिणाम कथावस्तु के संयोजन में प्रकट हुआ है। मुख्य कथा के साथ अनेक प्रासंगिक कथाएँ सुनियोजित ढंग से जुड़ी हुई हैं ये प्रासंगिक कथाएँ किसी हद तक अपना स्वतंत्र अस्तित्व भी रखती है। इसलिए इस रचना का विश्लेषण दो दिशाओं से किया जा सकता है। एक तो प्रासंगिक कथाओं के परस्पर संबंधों की व्याख्या करना है और उन्हीं के संदर्भ में मुख्य कथावस्तु का भी विश्लेषण करना है। दूसरा, लेखक ने जो प्रश्न प्रस्तुत किये हैं और जिन समस्याओं को प्रस्तुत करना चाहा है, उनके प्रति किये गये विचारों तथा समाधानों को लेखक ने हमारे सामने प्रस्तुत किया है। इनका विश्लेषण अलग-अलग विषयों के अनुसार किया जाता है।

[पृष्ठ संख्या के कारण पत्रिका 'ज्वालामुखी' में 'मुख्य कथावस्तु की संरचना और प्रासंगिक कथाओं का प्रकार्य' भाग ही प्रस्तुत किया जाता है।]

मुख्य कथावस्तु की संरचना और प्रासंगिक कथाओं का प्रकार्य :—

(1) कथा का आरंभ भट्टिनी के उद्धार की घटना से होता है। इससे पहले बाण अपनी पुराने सखी से स्थाण्वीश्वम के नगर में अकस्मात् मिल जाता है। जब निपुणिका से बाण भट्टिनी के उद्धार की योजना को सुनता है तब बाण के चरित्र का तर्क केवल यह है कि बाण के लिए स्त्री-देह देव-मंदिर की तरह पवित्र है, इसलिए जो स्त्री संकट में है उसका उद्धार करना बाण अपना कर्त्तव्य समझता है।

(2) जब बाण और निपुणिका ने भट्टिनी का उद्धार कर लिया है, तब से इस घटना की समस्या केवल एक बाण की नैतिकता की समस्या नहीं रह जाती, क्योंकि एक स्त्री को राजा के अंतःपुर से भगाना राज्य के कानून के विरुद्ध है। इसलिए अब तीनों को दूसरे राज्य में भाग जाना पड़ता है।

(3) इस प्रकार की परिस्थितयों में बाण अघोरभैरव और महामाया से मिल जाता है। बाण को अघोरभैरव से अभय का मंत्र दिया जाता है और महामाया से वात्सल्य रस का आस्वादन करने का अवसर मिलता है।

(4) तीनों को भद्रेश्वर-दुर्ग के सामंत लोरिक देव की शरण मिलती है। लेकिन इसी समय दुर्ग के आतंक की स्थिति सामने आती है। अब समस्या एक राज्य के स्तर की न होकर अंतर्राज्य स्तर की

Scanned with CamScanner

हो जाती है। इस परिस्थिति में भटिटनी तुवरमिलिन्द की राजकुमारी होने की भूमिका निभाती हुई सामने आती है जो राजाओं का सेना-संघठन करवाने का प्रतीक है।

(5) हूणों के आतंक के कारण देश में जो तनाव हुआ था उसके अतिरिक्त स्थाण्वीश्वर में एक अन्य घटना होती है। वह यह थी कि विरतिवज्र ने अपने मत को बौद्ध विज्ञानवाद से तांत्रिक मत में बदल लिया। इसलिए जो बौद्ध लोग राजसत्ता के नज़दीक थे उन्होंने विरति और उसके संबंधियों को कैद कर लिया। अब स्थाण्वीश्वर की सामाजिक अस्थिरता और तनाव शिखर तक पहुँच गया।

(6) महामाया अब तक अपने अतीत से जूझ रही थी और उसकी सिद्धि भी अभी तक नहीं हुई थी। उसकी सुप्त 'शक्ति' समाज को संकट में देखकर जाग उठती है। वह एकता के लिए जनता से अपील करती है और उन्हें समाज के लिए मर मिटने का पाठ सिखाती है। लेकिन अघोरभैरव ने महामाया का बताया कि उसने जनता को न्याय, सत्य और धर्म के लिए अपने को मिटाना तो सिखाया, अगर वह स्वयं भी जनहित के लिए मर मिटे तो वह बहुत बड़ी बात है।

(7) भट्टिनी कहती है महामाया का सत्य भी अधूरा है। महामाया हूण को म्लेच्छ कहकर घृणित समझती है, लेकिन हूण भी मनुष्य है जिसके मन में मनुष्यता है। 'सर्वव्याप्त रागात्मक हृदय' का संचार करने का कार्य कवि बाण को सौंपा जाता है।

इस प्रकार इस कथावस्तु में घटना के चार सोपान और तीन महत्वपूर्ण वक्तव्य दिखाई देते हैं। इसके अतिरिक्त लेखक ने इस रचना के आधार पर प्रेम का विषय रखा और मनुष्य को नैतिकता तथा जीवन के अस्तित्व पर प्रकाश डालते हुए नये मूल्यों को खोजने का प्रयास किया है।

उपर्युक्त मुख्य कथावस्तु और विषय के सहायक के रूप में जो प्रासंगिक कथाएँ दी गई हैं वे उसे और अधिक स्पष्ट एवं पुष्ट करती हैं।

मुख्य कथा में बाण भट्टिनी और निपुणिका के प्रेम का त्रिकोणात्मक संबंध मिलता है। इसके सहायक रूप में अघोर भैरव और महामाया का प्रसंग, विरतिवज्र और सुचरिता का जोड़ा और 'रत्नावली' की कथावस्तु आते हैं। एपिसोड के तौर पर गणिका मदनश्री, जटिलवटु की कहानियाँ आती हैं। जीवन-दर्शन के संदर्भ में अघोर भैरव और भट्टिनी का विचार मुख्य है। इसके प्रति सहायक के रूप में वाभ्रव्य की सहज आस्था, सुचरिता की आह्लादपूर्ण आस्था के प्रसंग आते हैं। एपिसोड के तौर पर सुचरिता की माँ की कहानी आती है। राजनीति के प्रसंग में महामाया का चरित्र मुख्य है। इसके सहायक के रूप में लोरिक देव का विचार है और प्रतिवस्तु के रूप में कुमार कृष्णवर्धन का चरित्र है। इन सबके आधार में बाण होता है। बाण का स्वभाव बहुत भोला है। बाण जो भी बात सुनता है, वह विस्मय एवं कुतूहल के साथ सुनता है। बाण ने जो सुना है और देखा है उसी के अनुसार यह कथा आगे बढ़ती जाती है। बाण के कवित्व अर्थात् उसके भोलेपन एवं आत्मसुचिता को इस रचना का महत्वपूर्ण विषय नहीं माना जा सकता। वास्तव में बाण के इस व्यक्तित्व का निर्माण 'आत्म-कथा' की वर्णन-पद्धति की स्थापना के निमित्त किया गया था, हालाँकि अवश्य ही इस पात्र का व्यक्तित्व चित्ताकर्षक तो है ही।

Scanned with CamScanner

पात्र चित्रण

जैसा पहले कहा जा चुका है कि लेखक का ध्यान व्यक्तिविशेष के व्यक्तित्व या मानसिक विश्लेषण की अपेक्षा जीवन दर्शन एवं नए मूल्यों की स्थापन-प्रक्रिया में अधिक रहा है तथा लेखक ने विचारणीय समस्याओं को झलक पात्रों के अंत:संघर्ष में से देने का प्रयास किया है। इसलिए इस उपन्यास की समीक्षा के संदर्भ में पात्रों के व्यक्तिगत विश्लेषण अधिक महत्वपूर्ण हैं। अस्तु यहाँ केवल पात्रों की प्रामाणिकता और कथा में उनकी प्रासंगिकता के संदर्भ में पात्रों का अति संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। (क) में ऐसे पुरुष पात्रों का परिचय दिया गया है जिन्हें कथा में महत्वपूर्ण भूमिका दी गई है या उनका सविस्तार वर्णन मिलता है। इसी प्रकार (ख) में प्रमुख नारी-पात्रों का परिचय दिया गया है। (ग) में अन्य उल्लिखित पात्रों के नाम दिए गए हैं। जो पात्र इतिहासानुमोदित हैं, उनके लिए *चिह्न लगाया गया है।

(क) प्रमुख पुरुष पात्र

* बाणभट्ट : मुख्य नायक ! वह हर्ष का राजकवि था। उसने 'कादम्बरी', 'हर्ष चरित' और 'चण्डी शतक' को रचना की। उसके प्रथम पुरुष के रूप में यह उपन्यास लिखा गया है। इस उपन्यास में बाण निष्कपट प्रेम करने वाले भोले मानस के रूप में आता है। वह दूसरों की बातों को सहज भाव से सुनता जाता है। इसी गुण को लेकर लेखक ने इस रचना के अद्भुत वर्णन का निर्माण किया।

अघोर भैरव : कौलाचार्य, अवधूत पाद और महामाया का वाग्दत्त पति। इस पात्र की विचारधारा में शैव तंत्र से भी अधिक बाद के नाथ-सम्प्रदाय का समीप संबंध दिखाई देता है। इसका व्यक्तित्व कबीर जैसा है। इस उपन्यास में बाण की आस्था इस पात्र में अधिक दिखाई देती है।

कुमार कृष्णवर्धन : हर्ष का भाई (चचेरा भाई), महासंधिविग्रह। 'हर्ष चरित' में उसका उल्लेख द्वितीय परिच्छेद में मिलता है। लेकिन इस उपन्यास में जो कुमार कृष्ण का चरित्र-चित्रण है उसकी तुलना 'हर्ष चरित' के 'भण्डि' से की जा सकती है जो हर्ष का ममेरा भाई लगता है।

लोरिक देव : आभीर सामंत। पहले वह गुप्तों का एक सैनिक था, अब स्वतन्त्र राज्य का सामंत है। भद्रेश्वर-दुर्ग उसका निवास स्थान है। इस पात्र के द्वारा जातिभेद रहित व्यवस्था का महत्व बताया जाता है।

हर्षवर्धन : कान्यकुब्जेश्वर महाराजाधिराज। वह कवियों का आश्रयदाता ही नहीं था, अपितु वह कवि भी था। उसने 'रत्नावली' 'नागानन्द' और 'प्रियदर्शिका' जैसे ग्रंथों की जो रचना की है वे सभी संस्कृत साहित्य की उच्चतम रचनाओं में गिनी जाती हैं। इस उपन्यास में उसका चरित्र-चित्रण इतना अधिक नहीं किया गया।

Scanned with CamScanner

देवपुत्र तुवरमिलिन्द; यवन राजा, भट्टिनी का पिता। उसका राज्य रोमकपत्तन के अस्त्रियवर्ष में था। बाद में वह पुरुषपुर में आ गया। इस उपन्यास में यह पात्र केवल लोगों में चर्चा के रूप में आता है पर उसकी भूमिका महत्वपूर्ण है।

सुगतभद्र : सौगताचार्य, भिक्षु। उनकी विचारधारा बौद्ध दर्शन के 'माध्यमिक' या 'शून्यवाद' से तुलनीय है।

वाभ्रव्य : मौखरि वंश के अंत:पुर का वृद्ध कंचुकी। इस पात्र के द्वारा महामाया का रहस्य पाठकों को बताया जाता है। उसकी सहज आस्था से लेखक के व्यक्तित्व का आभास मिलता है। 'वाभ्रव्य कंचुकी' का नाम 'रत्नावली' में भी इसी भूमिका में आता है।

*धावक : हर्ष का एक राजकवि। 'बना-बनाया विदूषक' (पृ०298)। इस पात्र के चरित्र-चित्रण में लेखक आधुनिक साहित्यकार के प्रति व्यंग्य का आभास मिलता है।

विरतिवज्र ; सुचरिता का पति। पहले वह अमोघवज्र के साथ बौद्ध-साधना कर रहा था। फिर अघोर भैरव की सलाह लेकर वेंकटेश भट्ट के यहाँ चला गया। इस व्यवहार के कारण स्थाण्वीश्वर में धार्मिक विरोध उत्पन्न हो जाता है।

वेंकटेश भट्ट : वैष्णव और शैव तंत्र के मिश्रित धर्म का संचारक। सुचरिता और विरतिवज्र का गुरु।

विग्रहवर्मा : मौखरि वंश का एक वीर जो पहले यशोवर्मा का सेवक था।

पुजारी : स्थाण्वीश्वर के एक चण्डी-मंदिर का पुजारी। लेखक ने इस पात्र का निर्माण 'कादम्बरी' के 'जरद्द्रविड धार्मिक' के सहारे किया है। (29)

इन पात्रों के अतिरिक्त 'कालिदास' का नाम चाहे उल्लेख मात्र हो, लेकिन उसकी भूमिका महत्वपूर्ण है। कालिदास पात्र के रूप में नहीं आते लेकिन उनकी लालित्य योजना इस उपन्यास में सर्वांग रूप से मिलती है। वास्तव में लेखक ने कालिदास की कविता का उद्धारण कई जगहों पर दिया है।

(ख) प्रमुख नारी पात्र

भट्टिनी : मुख्य नायिका, तुवर मिलिन्द की कन्या चंद्रदीधिति। यदि महामाया त्रिपुरसुंदरी की रौद्ररूपा हो तो भट्टिनी त्रिपुरसुंदरी का दक्षिण मुख है। इसके मुँह से 'सर्वव्याप्त रागात्मक हृदय' का संदेश दिया जाता है।

निपुणिका ; मुख्य नायिका। बाण उसे 'निपुणिका' के प्राकृत रूप 'निउनिया' से संबोधित करता है। निउनिया ने चंद्रदीधिति को भट्टिनी का नाम दिया। 'भट्टिनी' अन्त: पुर में रानी को कहते हैं। लेकिन निपुणिका के लिए 'भट्टिनी' का विशेष अभिप्राय छिपा

Scanned with CamScanner

हुआ था, अर्थात् 'भट्टिनी' निपुणिका के लिए देवतुल्य पुरुष बाण 'भट्ट' के समान पवित्र वाला—भट्ट स्वरूपा 'भटिटनी' थी। निपुणिका बाण और भटिटनी के प्रेम का सूत्र जोड़ने का सपना देखते हुए मर जाती है।

महामाया : गैरिक वस्त्र धारिणी भैरवी, अघोर भैरव की सहचारिणी। उसका जन्म किसी सम्पन्न परिवार में हुआ था। उसका वाग्दान अघोर भैरव के साथ हुआ था, लेकिन धूर्तों ने उसे 'कुलूत राज' की राजकुमारी के रूप में मौखरि वंश के अन्तः पुर में भेज दिया। वह मौखरि राजलक्ष्मी भी बन सकती थी। लेकिन अपने सत्य के लिए उसने साधना-मार्ग को चुना।

सुचरिता : विरतिवज्र की पत्नी, वेंकटेश भट्ट की शिष्या। इस पात्र की आह्लाद पूर्ण आस्था, सहज भक्ति-भावना द्रष्टव्य है।

चारुस्मिता : इतनी कुशल और सुन्दर नर्तकी जिसे देखकर ही भरतमुनि ने नर्तकी के गुणों के बारे में लिखा हो।

मदनश्री : एक गणिका। उसने बाण को अपनी सुन्दरता के जाल में फाँस लेने की कोशिश की, लेकिन इसका नतीजा बाण को निष्कपटता के प्रदर्शन में हुआ। उसका वर्णन निपुणिका के संस्मरण के रूप में किया गया है।

सुचरिता की सास : उसने अपने पुत्र विरतिवज्र को मातृत्व की सच्चाई के द्वारा सहज भाव का महत्व बताया।

(ग) अन्य गौण पात्र :

जिनका नाम केवल उल्लेख के रूप में किया गया है उनमें से इतिहासानुमोदित व्यक्तित्व निम्नलिखित हैं :—

राज्यश्री (हर्ष की छोटी बहिन, मौखरि राजलक्ष्मी), चन्द्रगुप्त (गुप्तवंश का प्रथम सम्राट), स्कन्दगुप्त (गुप्तवंश का षष्ठ सम्राट), भरतमुनि (नाट्यशास्त्र का लेखक), ग्रहवर्मा (मौखरि नरेश ग्रहवर्मन), शूद्रक (मृच्छकटिक' का रचयिता), यशोवर्मा (छठी शताब्दी का एक राजा जिसने हूणों को भगा दिया), हूण जाति (एक मंगोलियन जाति जिसने भारत के पश्चिमोत्तर से बारबार आर्यावर्त पर चढ़ाई की) और भर्वुशर्मा (बाणभट्ट का गुरु)

(घ) काल्पनिक पात्र :

उपन्यास में कल्पना से उद्भूत पात्र निम्नलिखित हैं :—

गोविन्द गुप्त ([30]), ईश्वरसेन (आभीर सामंत), वसुभूति (विज्ञानवादी बौद्ध दार्शनिक), उड्डपति (बाण भट्ट का चचेरा भाई) ([31]), अमोघ वज्र (बौद्ध आचार्य), जटिलवटु (एक मूर्ख व्यक्ति), अघोर घण्ट (अति वाममार्गी शैव तांत्रिक) और चण्डमुण्डना (अघोर पंथ की साधिका)

Scanned with CamScanner

टिप्पणी

(1) विशाल भारत उस समय कलकत्ता की सब से लोकप्रिय मासिक पत्रिका थी। जब द्विवेदी जी इस उपन्यास को छपवाते थे उस समय विशाल भारत का सम्पादक मोहन सिंह सेंगर था।

(2) 'साप्तहिक हिन्दुस्तान', 17 से 23 जून 1979 अंक पृ० 22

(3) 'विचार और वितर्क' पृ० 148 : गतिशील चिन्तन

(4) पूर्व दीप्ति का प्रयोग कथा विकास में किसी पूर्व प्रसंग का स्मरण कर वर्तमान कथा सूत्र के साथ विगत घटना का संबंध जोड़ने के लिए होता है।

(5) Marcel Proust : 1871~1922 French Auther

(6) 'तत: किम्' द्विवेदी जो का एक तकियाकलाम था।

(7) देखें, 'साहित्य सहचर' पृ० 75

(8) 'रोमांस में कल्पना का प्राबल्य होता है और उसमें एक ऐसे वातावरण का निर्माण किया जाता है, जो इस वास्तविक दुनिया की जटिलताओं से मुक्त रहता है पर जहाँ मनुष्य के मनोराग वैसे होते हैं जो इस दुनिया के होते हैं।'—वही—

(9) देखं 'हिन्दो साहित्य सहचर' पृ० 73

(10) देखें 'हर्ष चरित' प्रथम, द्वितीय और तृतीय उच्छवास

(11) 'हर्ष चरित' पृ० 229

(12) —वही—पृ० 322

(13) —वही—पृ० 322

(14) गौड देश बंगाल का एक देश माना जाता है जिसका राजा शशांक था।

(15) 'हर्ष चरित' पृ० 404

(16) —वही—

(17) —वही—अष्टम उच्छ्वास

(18) 612 ई०, इसी साल में 606 ई० से आरंभ होने वाले हर्ष संवत् का प्रवर्तन किया गया।

(19) 'Harsha and His Time' Dr. B.N. Srivastav p. 38

(20) 'हर्ष चरित' पृ० 240

(21) श्राद्ध—Sapiṇd ll karan : 'University the Preta with the Pitaras takes either or the twelfh day after the Cremation, at the end of three fortnight or on the expiry of the year' p. 267 'Hindu Sānskārs' Rajbali Pandey

Scanned with CamScanner

(22) धूम्रगिरि : इस स्थान के बारे में मालूम नहीं हो सका। जो भी हो वहाँ विन्ध्यटवी में यह वाममार्गी योगियों का केंद्र था।

(23) महायान बौद्ध धर्म का केंद्र। हर्ष युग में बौद्ध तन्त्र का केंद्र।

(24) 'अशोक के फूल' मेरी जन्मभूमि पृ० 34

(25) लोरिकायन : यह लोक गाथा सारे उत्तर भारत में प्रचलित है। लोरिकायन लोरिक-चँदवा या लोरकाइन (मगही बोली में) आदि नाम से भी प्रचलित है। खास कर आभीर लो आज कल भी शुभ अवसर पर इसे गाया करते है। देखें 'मगही-भाषा और साहित्य' पृ० 327~ पृ० 337 डा० सम्पति अर्याणी

(26) द्विवेदी जी ने 'पुनर्नवा' में लोरिक को उपन्यास का नायक बनाया है।

(27) इतिहास शास्त्र में राज्यवर्धन के हूण के प्रति अभियान के बाद हूणों का बड़े पेमाने में कोई आक्रमण नहीं माना जाता है।

(28) कालिदास की एक रचना।

(29) p. 337~p. 341 'Bāna's Kadamberi' M.R. Kale

(30) गुप्तवंश में 'गोविन्द गुप्त' नाम का कोई राजा नहीं है। लेखक ने उसे जातिभेद रहित समाज के प्रवर्तक की भूमिका दी है। (देखें पृ० 249)

(31) लेखक ने 'हर्ष चरित' में उल्लिखित 'तारापति' को बदल कर यह नाम रख दिया। उड्डपति का अर्थ तारा ही है।

Scanned with CamScanner

क्या रामचरितमानस जन हितों के लिए लिखा गया था ?

ताकाको सुगानुमा

भारतीय जनता में ही नहीं अपितु विश्व में सर्वख्यिात "रामचरितमानस" में किस प्रकार धर्म के शासक वर्गों के स्वार्थों की छाप दिखाई पड़ती है और वह जन साहित्य का आवतरण लेकर किस प्रकार जनता को शक्तिहीन बनाने का षड़यंत्र करता है, इस बात को साबित करने से पहले साहित्य और अन्य कलात्मक अभिव्यक्ति के सम्बन्ध में अपनी मूल मान्यता स्पष्ट करना उचित होगा।

साहित्यिक प्रक्रिया मनुष्य के जोवन की क्रिया-प्रतिक्रिया का एक अंग मात्र है। फिर भी निश्चित रूप से एक अंग होने के नाते उसकी सामाजिक पृष्ठ भूमि की अपेक्षा नहीं की जा सकती है। वह प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से समसामयिक सामाजिक परिवेश से आबद्ध है। लेकिन इसका अर्थ सीधे यह नहीं निकलता है कि किसी साहित्यिक रचना की सामग्रियाँ सवर्था समसामयिक समाज में से हो ली जानी चाहिए। सवाल है उस साहित्य के मूल भावों का स्वरूप।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में जनवादी साहित्य जिसकी महत्वपूर्ण भूमिका प्रेमचंद द्वारा स्थापित हुई है, एक ठास धारा बनकर चल रही है। लेकिन मैं ग्रामीण जीवन का चित्रण, निम्नवर्ग की जनता के जोवन का चित्रण, जनभाषा का प्रयोग, इत्यादि बाह्य रूपों को जनवादी साहित्य की कसौटी मानने वालों से सहमत नहीं हूँ। वैसे शासक वर्ग भी जनता को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए उसी तरह का प्रयास करता ही है। विषय के सम्बन्ध में भी मैं राजनैतिक नारे का अनुवाद मात्र रूपी प्रगतिशील साहित्य को जन साहित्य मानने को भो तैयार नहीं हूँ। राजनैतिक या धार्मिक अत्याचारों का विरोध यथार्थ के स्तर पर यथार्थ रूप से होना चाहिए न कि साहित्यिक माध्यम से। साहित्य समाज-सुधार आंदोलन का सीधे तौर पर अस्त्र बन सकता है—यह जनवादो से अलग केवल बुद्धिजोवियों की कल्पना मात्र है। यथार्थ स्तर का यथार्थ प्रयास ही जनता में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास के लिए योगदान देगा, जनता के भीतर अचूक शक्ति प्रदान करेगा।

मुझे भारतवर्ष में साढ़े तीन साल रहकर हिन्दी साहित्य तथा भारतीय संस्कृति के कुछ अंशों से परिचित होने का सुअवसर मिला था। भारत जाने से पूर्व मैं कई वर्षों से स्वतंत्र व्यक्ति का विचार किस प्रकार बन जाता है, विचारों का रूप किस प्रकार भाषिक रूप सीमा से आवद्ध है, इस विषय पर विचार करती थी। और मेरा अनुमान था कि किसी भी भाषा में सीमा अवश्य है परन्तु इस सीमा को तोड़ने का काम स्वयं भाषिक प्रक्रिया के रूप में प्रगतिशील साहित्य हो कर सकेगा। हिंदी साहित्य अपने इस दायित्व को किस प्रकार निभा रहा है ? यही जिज्ञासा थी जो मुझे भारतवर्ष तक लिवा गयी थी।

Scanned with CamScanner

परन्तु हिंदी साहित्यि में उस प्रगतिशीलता से अधिक रूढ़िवादता को देखकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। विश्वविद्यालय में जो-जो साहित्य का पठन-पाठन हो रहा है उनमें आलोचनात्मक शक्ति बहुत कम दिखाई पड़ती थी। छात्र-छात्राएँ साहित्य में रस लेने में अत्यंत निपुण हैं परन्तु उनमें भी आलोचनात्मक शक्ति की कमी प्रतीत हुई। (मैं यह बात बहुसंख्यक प्रवृत्ति के बारे में बता रही हूँ।) इस हिन्दी के साहित्यिक वातावरण की विशिष्टता का कारण सोचते-सोचते मेरा दिन बीत गया और अन्त में उसका एक उत्तर मुझे "रामचरितमानस" में मिला। दूसरे शब्दों में भारतीय जनता की विशिष्ट प्रवृत्तियों की आधार भूमि को समझने के लिए और स्पष्ट करने के लिए उस शक्तिशाली साहित्यिक कृति का मूलभूत अध्ययन विश्लेषण की आवश्यकता मैंने महसूस की। अतः आगे इस अध्ययन से जिस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ उसको संक्षिप्त में प्रस्तुत करना चाहती हूँ।

बाल्मीकि रामायण तथा तुलसी रचित रामरिचतमानस के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों की राम कथा में मौलिक अन्तर है जो हम लोगों को साहित्य की सामाजिकता, लेखक कवि की सोद्देश्यता की ओर नजर डालने को मजबूर करता है। बाल्मीकि रामायण इक्ष्वाकु वंश नामक आर्य जाति की भारत के पूर्व निवासी अनार्य जाति के ऊपर विजय की गाथा है। अतः वह ऐतिहासिक भी है। परन्तु तुलसी काल में अब आर्य जाति के शासक वर्ग की समस्या अनार्य जाति की न होकर आक्रमणकारी मुसलमानों की तथा या उससे अधिक अपने अंतर्गत नीच कहे जाने वाली जातियों की वर्ण-व्यवस्था की विरोधी शक्ति की थी। तुलसी काल में उन जातियों की शक्ति कितनी प्रबल थी वह हम कबीर आदि मध्यकालीन संतों के साहित्य में देख सकते हैं। इतना ही नहीं, स्वयं मानस में भी उन विद्रोही शक्तियों के प्रति ब्राह्मण वर्गों का खटराग भाव स्पष्ट रूप से झलकता है।

"बादहिं सूदा द्विजन-सन, हम तुम-ते कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रवर, आँखि देखावहिं डाँटि॥

(राम चरित मानस, उत्तर कांड-69ख)

महापंडित तुलसीदास जी कहते हैं कि आजकल शूद्र से नीची जाति के लोग भी ब्राह्मण जैसे उच्च लोगों के सामने आकर कह डालता है कि क्या हम तुमसे कुछ कम हैं, अर्थात् कुछ भी कम नहीं हैं। चाहे कोई ब्राह्मण जाति का हो चाहे शूद्र जाति का, उसमें कोई स्थायी मूल्य नहीं हैं। जो निर्गुण ब्रह्म को जानता है वही श्रेष्ठ है, अन्यथा नहीं। यदि कोई जन्म से ब्राह्मण जाति का होकर भी ब्रह्म को नहीं जानता तो वह नीच है। इस प्रकार आँख दिखाकर ब्राह्मणों को डाँटने का अधर्म पूर्ण काम कर बैठता है। यह बहुत शोचनीय दशा है, आह...कलियुग की दशा है।

इस परिस्थिति में, जन समूह में पनपने वाली उन भयंकर विद्रोही शक्तियों को तोड़ कर पुरानी ब्राह्मण प्रधान वर्ग व्यवस्था का पुर्नसंगठन ही ब्राह्मण पुरोहितों की अपनी रक्षा के लिए परम आवश्यकता बनकर सामने उपस्थित थी।

ऐसे महत्वपूर्ण समय पर तुलसीदास संस्कृत में लिखे हुए आदर्शों 'रामचरित' का जन भाषा में अनुवाद मात्र करने के लिए ही मंच पर नहीं आया था बल्कि वह रामकथा के माध्यम से जनता को

Scanned with CamScanner

शक्तिहीन बनाकर अपनी धर्म सत्ता की सीमा में बाँधे रखने के लिए चाहने वाले ब्राह्मणों, पुरोहितों की जनविरोधी प्रक्रिया का सहचारी बनकर आया था। तुलसी स्वयं पंडित था और ब्राह्मणों तथा राजाओं की छत्र-छाया में जीता था तो उसकी साहित्यिक प्रक्रिया में इस परिणाम का क्या आश्चर्य ? भारतवर्ष में वैष्णव, ब्राह्मणों का यह प्रयास काफी सफल भी हुआ और चारसौ वर्ष बीतने पर भी जनता 'मानस' गा-गाकर भगवान की प्रशंसा करते-करते भूखी-नंगी और भटकते हुए दिखाई पड़ती है। 'गोदान' के होरी की भाँति। क्यों जनता इतनी शक्तिहीन है ? स्पष्ट है कि वह भक्ति आंदोलन का सफल परिणाम है। भक्ति आंदोलन के मौलिक उद्देश्य की अभिव्यक्ति रूपी रामचरितमानस के जनहित विरोधी स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए हम बाल्मीकि रामायण तथा मानस का तुलनात्मक विचार करके देखेंगे।

जब राम अपने पिता द्वारा की गई प्रतिज्ञा के पालन के लिए अयोध्या छोड़कर लक्ष्मण, सीता सहित चित्रकूट के वन में प्रवेश करते हैं तो वहाँ विराध नामक राक्षस के आक्रमण का सामना करना पड़ा। उस राक्षस विराध का वर्णन बाल्मीकि रामायण में सूक्ष्म रूप से किया गया है जो इस प्रकार है :

1. नर भक्षी है।
2. गहरी आँखें, बहुत बड़ा मुँह, विकट आकार, विकराल पेट, देखने में बड़ा भयंकर, घृणित, बेडौल, बहुत बड़ा, विकृत वेश से युक्त है।
3. वह एक लोह के शूल में तीन सिंह, चार बाघ, दो भेड़िये, दस चितकबरे हरिण और दाँतों सहित एक बहुत बड़े हाथी के मस्तक को, जिसमें चर्बी लिपटी हुई थी, गाथ कर जोर-जोर से दहाड़ रहा था।
4. वह 'जव' नामक राक्षस का पुत्र है, माता का नाम 'शतहदा' है।
5. उसने तपस्या के द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न करके किसी भी शस्त्र से न मारा जाने का वरदान प्राप्त किया है।
6. राक्षस होने के पहले वह तुम्बुरू नामक गन्धर्व था। परन्तु कुबेर के शाप के कारण राक्षस शरीर प्राप्त किया हुआ है, क्योंकि वह रम्भा नामक अप्सरा में आसक्त होकर एक दिन ठीक समय से उनकी सेवा में उपस्थित न हुआ था।

ऊपर वर्णित निशानों से अनुमान लगाया जा सकता है कि बाल्मीकि के दिमाग में एक यथार्थ जाति समूह था जो शायद आज भी वन्य जाति के रूप में पायी जाती है। वे लोग विद्वानों के वर्गीकरण के अनुसार Austro-Asiatic नाम से जाने जाते हैं। बाल्मीकि के इस सूक्ष्म वर्णन की अपेक्षा रामचरितमानस में केवल इतना ही वर्णित हैं :

जहँ-जहँ जाहिं देव रघुराया, करहिं मेघ तहँ-तहँ नभ छाया।
असुर विराध मिला मग जाता, आवत ही, रघवीर, निपाता ।
तुरतहिं रुचिर रूप तहिं पाया, देखि-दुखी निज धाम पठावा ॥

(अरण्य काण्ड 6 ख-3)

Scanned with CamScanner

यह दशा शूर्पणखा के प्रसंग में भी समान रूप से पायी जाती है। बाल्मीकि रामायण के अनुसार शूर्पणखा का वर्णन इस प्रकार है :

1. हाथी के समान मन्दगति से चलने वाली।
2. बेडौल लम्बे पेट वाली।
3. मुख भद्दा एवं कुरूप
4. नेत्र कुरूप एवं डरावने।
5. सिर के बाल तांबे जैसे लाल।
6. रूप वीभत्स और विकराल।
7. भैरवनाद करने वाली।
8. देखने में क्रूर हजारों वर्षों की बुढ़िया।
9. साँसों में कुटिलता भरी रहती है।
10 दुराचारिणी।
11. उसको देखते ही घृणा पैदा होती है।

रामचरितमानस में इस प्रकार का सूक्ष्म वर्णन नहीं मिलता है। तुलसी ने केवल इतना ही कहा है :—

सूपनखा रावन कै बहिनी, दुष्ट हृदय, दारुन जसि अहिनी।

(अरण्य काण्ड 16-2)

इससे पता चलता है कि तुलसी के दिमाग में शूर्पणखा के सम्बन्ध में "दुराचारिणी" के अतिरिक्त कोई वास्तविक भाव नहीं था। इसी कारण शूर्पणखा का व्यक्तित्व कोई विशेष जाति का न होकर नारी समूह में नीचता का प्रतीक बनाकर वह अपना नीति-संबंधी यह कथन जोड़ देता है।

भ्राता, पिता, पुत्र, उरगारी, पुरुष मनोहर निरखत नारी।
होइ बिकल सक मनहि न रोकी, जिमि रबि-मनि द्रव रबिहि बिलोकी।

(अरण्य काण्ड 16-3)

अब लंका तथा रावण के वर्णन में तुलसी की मौलिकता किस प्रकार प्रकट हुई है, इस विषय में विचार करेंगे।

वास्तव में लंका बहुत विशाल धन सम्पन्न सुखमय देश था। इसका वर्णन दोनों में उपलब्ध है यदि कोई अन्तर है तो केवल मात्रा में। परन्तु सूक्ष्म रूप से देखें तो एक महत्वपूर्ण तथ्य उभरकर आता है कि रामचरितमानस में न केवल रावण का तथा लंकावासियों का धार्मिकता संबंधी वर्णन दिखाई पड़ता है बल्कि उसमें उनकी दुष्टता के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन की भरमार है। बाल्मीकि रामायण के अनुसा

Scanned with CamScanner

रावण शिव का बड़ा भक्त था तथा प्रजा भी अत्यंत धार्मिक प्रवृत्ति की थी। हनुमान ने राक्षसों के घरों में बहुतों को तो मंत्र जपते हुए सुना और कितने ही निशाचरों को स्वाध्याय में तत्पर देखा। तुलसी ने लंका नगर की विशालता, सुन्दरता, सैनिकों की वीरता, सुन्दर स्त्रियों का वर्णन अवश्य किया था परन्तु यह भी महापंडित तुलसी दास के इतना भावानुकूल न होने के कारण साथ-साथ ऐसा बहाना करते हुए दिखाई पड़ता है।

"तुलसी ने तो इनका थोड़ा परिचय इसलिए दे डाला कि ऐसे दुष्ट राक्षस भी राम के बाणों के तीर्थ में शरीर त्यागकर निश्चय ही परम गति प्राप्त कर लेंगे।"

इस प्रकार तुलसी ने रावण की तथा समस्त लंका वासियों की धार्मिक प्रवृत्ति को चतुरतापूर्वक पीछे छिपा दिया। शायद इसीलिए कि तुलसी ने किसी भी शत्रु को धार्मिक बताना अहितकर समझा था, क्योंकि वह धर्म विरोधी होने के कारण नीच हैं, मारने लायक है, अत: इस प्रकार की विचारधाराओं को जनता के मन में बैठाने की आवश्यकता थी। दूसरी जगह (बाल काण्ड में) रावण तथा राक्षसों (लंका निवासियों) की अधार्मिकता सम्बन्धी जो-जो वर्णन हैं, वह बाल्मीकि रामायण से बिलकुल विपरीत भी हैं।

देखत भीम रूप सब पापी निसिचर निकर देव परितापी।
करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया ॥2॥

जेहि बिधि होइ धरम निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला।
जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाँऊँ पुर आगि लगावहिं ॥3॥

सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव-बिप्र गुरु मान न कोई
नहिं हरि भगति, जग्य तप ग्याना। सपनेहु सुनिय न बेद पुराना ॥4॥

जप, जोग बिरागा, तप मख-भागा, स्रवन सुनै दस सीसा।
आपुन उठि धावै, रहै न पावै, धरि सब घालै खीसा।
अस भ्रष्ट अचारा, भा संसारा, धरम सुनिय नहिं काना।
तेहि बहु बिधि त्रासै, देस निकासै, जो कह बेद पुराना ॥8। (बाल काण्ड 182)

इन उदाहरणों से मुझे लगता है कि तुलसी ने पूर्ववर्ती संस्कृत परम्परा की 'राम कथा' को जनता के हितों के लिए जन भाषा में ज्यों का त्यों अनुवाद या सरलीकरण नहीं किया था बल्कि अपनी युगीन परिस्थिति में ब्राह्मण वर्ग की इच्छा के अनुकूल परिवर्तित करके प्रस्तुत किया था। हाँ, यह सत्य है कि यह काम तुलसी ने पहली बार नहीं किया था। स्वयं राम कथा का इतिहास राजनैतिक, सामाजिक शक्तियों के परिवर्तन का इतिहास है। परन्तु इस निबन्ध का विषय तुलसी की काव्य-प्रक्रिया तथा समाज के सम्बन्ध का स्पष्टीकरण होने के कारण मैं बाल्मीकि रामायण तथा मानस के मध्यवर्ती राम कथा परम्परा का विश्लेषण इसी समय नहीं करूँगी।

अब इस बात को और स्पष्ट करने के लिए आगे रामचरितमानस के मूल विषय भक्ति सम्बन्धी तुलसी की अपनी मौलिक उक्तियों का विश्लेषण किया जाएगा। (क्रमश :)

Scanned with CamScanner

जनवादी लेखक काशीनाथ सिंह की कहानियाँ

शिगेओ अराकि

भारतीय समाज में मेरी रुचि सन् 1975 से पैदा हुई जब मैं पहलोबार भारत घूमने गया था। जहाँ मैं भारत की साधारण जनता से मिला वहाँ मैंने इन लोगों का अस्तित्व महसूस किया। वे लो पश्चिमी देशों की सभ्यता एवं संस्कृति अर्थात् आधुनिकीकरण की बाढ़ से प्रभावित होते हुए भी मूल रू में अपने देशी-जीवन में जीने के लिए संघर्ष कर रहे थे। जापान में सन 1967 से 72 तक मानवता प्राप्ति के लिए राजनैतिक तथा सांस्कृतिक आन्दोलन हुआ था। लेकिन यह आन्दोलन शासक को शक्ति आसानी से दबाया गया था। इसके बाद हम लोग पहले से बढ़ते हुए अकेलेपन की भावना में रहते रहे। मुझे लग रहा था कि यह अकेलेपन को भावना क्यों मेरे मन में पैदा हुई है ? वह शायद देशी जीवन जी की शक्ति अर्थात् व्यक्तित्व (आइडेन्टिटि) खो जाने के कारण होगा, और इस आन्दोलन में हमारी हा का सबसे बड़ा कारण भी यही होगा। मेरी समझ में आया कि जब लोग अपने व्यक्तित्व को खो देते तो आसानी से पूँजीवाद तथा राष्ट्रवाद के तर्कशास्त्र के जाल में पकड़े जाते हैं। मैंने वही देशी जीवन जीने की शक्ति भारतीय जनता में देखी।

किन्तु भारत की जनता अपकारहीन इतिहास में नहीं जी रही थी, बल्कि इस दुनिया के मान इतिहास में अभूतपूर्ण उपनिवेशात्मक शासन में अर्थात क्रूर आधुनिकता में उन लोगों को लगभग दो वर्षों तक सहन करना पड़ा था और अब वे लोग अपने देश के पूँजीपतियों द्वारा किये जा रहे भारती आधुनिकीकरण में जी रहे हैं। फिर भी मैंने उन लोगों में अस्तित्व अर्थात् अपने व्यक्तित्व में जीने श शक्ति महसूस की।

कभी केनिया के स्व० राष्ट्रपति केनियत्त ने कहा था कि पृथ्वी मनुष्य को जीने के लिए जरूरत च चीजें देती है और उससे मनुष्यों की आध्यात्मिक तथा बौद्धिक अभिलाषाओं का संतोष हो जाता है जीनेवाले और पुरखों का संबंध भी दफनाये गए पुरखों की भूमि में रहने से जोड़ा जाता है। इस प्रका के विश्वास से गिकुयु जाति के लोग जो अफ्रीका की एक जाति है, भूमि को 'जाति की माँ' समझते हैं। ठी इसी प्रकार की विचारधारा एशियाई एवं अफ्रीकी देशों की जनता के जीने की मूल धातु होगी। पृथ्वी पैदा हुआ मनुष्य, ऐसे मनुष्य के संबंध से पैदा हुई जन समुदाय की नैतिकता, प्रकृति या पारप्रकृति से संबंधित संस्कृति ही एशियाई एवं अफ्रीको देशों की विशेषताएँ हैं। मैं समझता हूँ कि एशियाई-अफ्री देशों की जनता के जीने का जो संघर्ष कभी उपनिवेशवाद से हो या अपने देश के शासक से हो, व वास्तव में ऐसी मूल धातु को नष्ट करने वालों से लड़ने का है और नष्ट हुई हमारी जीने की मूल धा को फिर से जीवित करने के लिए उन देशों की जनता की विचारधारा जानने की आवश्यकता मैंने महसू

Scanned with CamScanner

को। मैंने इसको भारतीय जनता के जीने के संघर्ष में देखना चाहा, वह भी आधुनिकीकरण को बाढ़ में जी रही जनता को।

जापान की बौद्धिक परिस्थिति में भारत बौद्ध धर्म का जन्म स्थान, योगा तथा हिन्दू धर्म का रहस्यमय देश, प्राचीन मूर्तिकला एवं संगीत का देश अथवा निस्सीम अमीर और नितान्त गरीबों का देश समझा जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारत हमारे देश के यातायात पूँजीवादी कम्पनियों तथा प्रकाशन पूँजीवादी कम्पनियों की इच्छानुसार बनाया गया एक प्रकार का माल है। यह माल भारत की जनता की उपेक्षा से पैदा होता है। उन लोगों का व्यापार भारतीय जनता के जीवन में विद्यमान समसामयिक समस्या, विशेषकर 'राजनीति' या 'आधुनिकता' को न दिखाने से होता है। इस प्रकार के व्यापारों से जापान के आध्यात्मिक उपनिवेशवादी की बू मेरी नाक में आती है।

मैंने भारत की जनता को समझने के लिए भारत की जनता की आवाज़ साहित्य में से सुननी चाही और विकसित देशों के पाठकों या भारत के उच्च वर्ग के पाठकों का मन संतुष्ट करने की अंग्रेजी भाषा की कहानियाँ नहीं, बल्कि अपने देश की साधारण जनता के बीच में रहकर जिन लोगों के जीवन तथा भाग्य को देखते देखते जनता के लिए लिखने वाले लेखकों की कहानियाँ पढ़नी चाही। वह भारतीय जनता के जीने के संघर्ष से प्रेरणा ली, यह अपनी भावना को स्थिर बनाने के लिए जरूरी था। लेकिन जापानी भाषा में अनूदित आधुनिक भारतीय साहित्य पढ़ना लगभग असम्भव प्रतीत होता है। अध्ययन के क्षेत्र की पत्रिकाओं में छपी कहानियों के अतिरिक्त प्रेमचन्द की कहानियाँ ही हमें देखने को मिलेंगी। अब तक जापान में भारतीय साहित्य का अर्थ ऐसा समझा जाता है कि संस्कृत साहित्य अर्थात् वेद, उपनिषद् अथवा पाली भाषा में रचित धर्म साहित्य। अगर ऐसा नहीं तो नोबल पुरस्कार पुरस्कृत रवीन्द्र नाथ ठाकुर की कविताएँ ही भारतीय साहित्य समझा जाता है। वह भी बंगला भाषा में नहीं, अंग्रेजी भाषा में अनूदित कविताएँ। इस प्रकार की प्रवृत्ति सिर्फ भारतीय साहित्य में ही नहीं, बल्कि अन्य एशियाई अफ्रीकी देशों के साहित्य में भी होती है। इससे हमारे देश के पाठकों की परिस्थिति समझी जा सकती है।

मैंने भारत की जनता की आवाज़ सुनने के लिए हिन्दी भाषा सीखना शुरू किया। मैंने साधारण यानी दलित वर्ग के लोग तथा श्रमजीवियों की आवाज़ अपनी कलम की शक्ति में बदल कर लिखने वाले लेखकों की रचनाओं को पढ़ना चाहा। उनको ढूँढने के लिए मुझे भारतवर्ष में अपने आप घूमना पड़ा और उसके परिणामस्वरूप मुझे काशीनाथ सिंह की कहानियाँ मिलीं।

काशीनाथ सिंह की कहानियों का विश्लेषण करने से पहले आधुनिक हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त परिचय देना चाहूँगा।

अगर मध्यकालीन भक्ति साहित्य को हिन्दी साहित्य का प्रथम स्वर्ण युग मान लिया जाय तो सन् 1920 से '40 के स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान के साहित्य को दूसरा स्वर्ण युग कहा जा सकता है। इस युग के प्रतिनिधि प्रेमचन्द हैं। तीसरा युग सन 1947 के स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से शुरू होता है।

Scanned with CamScanner

स्वतन्त्रता के बाद के 15 वर्ष रोमानियत का युग है। इस साहित्य की विशेषता 'भावना का सत्य' एवं 'ग्रामीण जीवन के दृश्य का चित्रण' है। ग्रामीण जीवन के एक दृश्य को भावुक सहानुभूति के साथ चित्रण करना अर्थात् ग्रामांचलिकता इस युग की सबसे बड़ी विशेषता थी जिसके कथाकार के रूप में फणीश्वरनाथ रेणु, मार्कण्डेय आदि औरों के नाम आते हैं। इसके अलावा इस युग की विशेषता यह है कि रोमानियत की कहानियों का अंत हमेशा सुख में होता है।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर एवं हिन्दी साहित्य के जाने-माने आलोचक डा० नामवर सिंह लिखते हैं कि इस युग की अधिकांश कहानियाँ असंतोष की भावना से भरे समाज में आशा और भरोसा पाठकों तक पहुँचाती हैं। भारत-पाक विभाजन के दौरान हुए दंगे, राजनैतिक गड़बड़ी, कांग्रेस पार्टी की अवनति, सुधारहीन गरीबी आदि की सामाजिक असंगतियों को स्वीकार करते हुए भी इस युग के लेखक जिन असंगतियों का विरोध किये बिना नेहरू की आशावादी समाजवाद की नीति पर आशा तथा भरोसा रखते थे, पर इस प्रकार की रोमानियत सन् 60 के आस-पास चरम सीमा तक पहुँचने के बाद आत्मवाद और रहस्यवाद की ओर परिवर्तित होकर समसामयिक युग के कष्टों को अभिव्यक्ति करने लगी। ये आत्मवाद तथा रहस्यवाद की विचारधाराएँ पश्चिमी देशों की साहित्यधारा के प्रभाव की प्रति हिन्दी साहित्य पर अभिव्यक्ति अथवा भारत-पाक विभाजन के बाद भारत में पैदा हुए हिन्दू-मुसलमानों के तनावों की एक प्रकार की प्रतीक ही नहीं बल्कि युग के आशाहीन वातावरण का प्रतिबिम्ब भी थी। इनको ध्यान में रखते हुए फिर से रूमानी विचारधारा पर नज़र डालें, तो किसी भी विचारधारा को हटाना "भावना का सत्य" स्वयं विकासशील देशों को साहित्य धारा के लिए उचित नहीं होगा। स्वतंत्रता प्राप्ति तक पूरी गति से सामाजिक विषयों को लेकर जो लेखक लिखते थे वे स्वतंत्रता के बाद क्यों रोमैंटिक वाद अपनाने लगे? इस परिवर्तन में आधुनिक हिन्दी साहित्य की स्थिति समझने का रहस्य होता है। इसके संदर्भ में कहा गया है कि 15 अगस्त सन् 1947 से वर्ग संघर्ष नये रूप में परिवर्तित होने लगा अर्थात् जब तक अंग्रेज़ों उपनिवेशवाद के प्रति आन्दोलन जारी रहा तब तक श्रमिक वर्ग, मध्यवर्ग एवं पूँजीपति वर्ग के लोग संयुक्त रूप से संघर्ष कर रहे थे, परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद यानी 15 अगस्त से श्रमिक वर्ग मध्यवर्ग, पूँजीपति वर्ग के बीच में विभाजन हुआ। मध्यवर्ग के अन्दर में भी कई प्रकार के विभाजन हुए और इन विभाजन हुए वर्गों के बीच में परस्पर विरोध पैदा हुआ। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने देश को स्वतन्त्रता के अवसर पर अपनी पार्टी और कांग्रेस पार्टी की संयुक्त कार्य-नीति को फाड़ कर कांग्रेस पार्टी की तीव्र निन्दा की। कम्युनिस्ट पार्टी का विश्वास था कि कांग्रेस पार्टी साम्राज्यवाद के रास्ते पर चलने लगी। इस वस्तुस्थिति में प्रगतिशील लेखकों का भी साम्यवादी लेखक और गैर साम्यवादी लेखकों में विभाजन हुआ और परस्पर विरोधों से गैर साम्यवादी लेखक स्पष्ट रूप से साम्यवादी विरोधी लेखक बन जाने लगे। उन लोगों ने मार्क्सवाद के प्रति देशभक्ति एवं मानवतावाद के नारे उठाए। परन्तु बाद में उन्हें भी स्वीकारना पड़ा कि भारतीय कांग्रेस पार्टी की कार्य-नीति भारतीय समाज की समस्याओं के समाधान के लिए न होकर साम्राज्यवादी नीति की ओर चल रही है और इसके अलावा उन लोगों का नारा मानवतावाद भी असल में अमेरिकी साम्राज्यवाद के प्रचार का एक अंश ही है। तब उन लोगों ने अंतिम आशा के रूप में कांग्रेस पार्टी के नारों में से वैयक्तिक स्वतंत्रता को अपना कर समस्त वाद विचारधाराओं को हटाकर "भावना की स्वतंत्रता" पर बल दिया था और उसी के द्वारा वे लोग वास्तव में भाववाद

Scanned with CamScanner

अथवा रहस्यवाद की ओर मुड़ गए थे। उन लोगों ने ऊपर से जरूर नेहरू की नीतियों का विरोध तो किया था, पर अपने मन में नेहरू युग के बनाए गए सपने का समर्थन किया था। इन लोगों के प्रभाव से स्वतन्त्रता के 15 वर्षों में यथार्थ से लड़ने की प्रवृत्ति कम हो गई, साथ ही साम्यवादी लेखक भी अपनी पार्टी के सिद्धान्त के आधार पर ही लिखने के कारण यथार्थ से नहीं लड़े। अगर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के 15 वर्षों को "माया का युग" कहें, तो, 60 से "मोह-भंग का युग" कहा जा सकता है। सन् 1962 के भारत-चीन सीमा युद्ध में भारत की हार और सन् 1964 के नेहरू का देहान्त नेहरू युग की आशावादी कल्पना का अचानक पतन था। नेहरू के देहान्त के बाद जनता के सामने समस्याओं से भरा हुआ यथार्थ उभर आया। इस वातावरण में रूमानी साहित्य की उन्नति की आशा ही नहीं थी। पुराने लेखक खामोश रहे और नई पीढ़ी के कथाकार साहित्य के मंच पर आने लगे। जिन्होंने जन मुक्ति संग्राम तथा देश का स्वतन्त्रता संग्राम भी नहीं देखे थे, उन लोगों ने अमेरिकी कविता से प्रभावित होकर अपनी कृतियों द्वारा परम्परागत हिन्दी साहित्य तथा भारतीय समाज पर असंतोष और क्रोध की अभिव्यक्ति की, पर उन लोगों के विरोध तथा आक्रमण की आवाजों को बाढ़ भी तूफान की तरह चली गई। इससे भी अधिक नई पीढ़ी का मन आकर्षित करने वाली थी नई वामपंथी विचारधारा। यह भी पश्चिमी देशों की तुलना में इसका सिद्धान्त स्पष्ट नहीं था। तात्पर्य यह है कि पश्चिमी देशों से आयातित विचारधारा एवं आन्दोलन ने भारत में कोई नया बहुमूल्य सर्जनशील साहित्य पैदा नहीं किया और पश्चिमी देशों से आयातित विचारधारा चली जाने के बाद फिर नये कथाकार मंच पर आने लगे। वे लोग आन्दोलन एवं गुटों से अलग रहकर यथार्थवादी दृष्टि से कहानियाँ लिखते थे। इन कथाकारों में से एक काशीनाथ सिंह थे। वे अपनी रचनाओं को अपने देश की जातीय साहित्यिक परम्परा में जुड़ा रख कर 'आलोचनात्मक समाजवादी यथार्थवाद' कहते हैं।

काशीनाथ सिंह का जन्म कब हुआ, यह उन्हें भी ठीक से नहीं मालूम। सन् 1936 या 1937 की किसी तारीख को वाराणसी के जीवनपुर में वे जन्मे। आरम्भिक शिक्षा गाँव में पाई। काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय से हिन्दी में एम० ए० और पी-एच० डी० की। सन् 1964 से काशी हिन्दू विद्यालय के हिन्दी विभाग में अध्यापक [illegible]। सन् 60 में साहित्यिक पत्रिका "कृति" में पहली बार कहानी प्रकाशित कराने के बाद उन्होंने अब तक लगभग 50 कहानियाँ लिखीं। अब तक कहानी संग्रह "लोग बिस्तरों पर" (सन् '68) "सुबह का डर" (सन् '75) 'आदमीनामा" (सन् '78) "नयी तारीख" (सन् '79) प्रकाशित हैं और उपन्यास "अपना मोर्चा" (सन् '71) भी प्रकाशित किया गया, इसके अलावा वे नाटक भी लिखते हैं। वे सभी कृतियाँ हिन्दी में लिखते हैं।

रचना का विश्लेषण करने की जरूरत नहीं है क्योंकि साहित्य से किस प्रकार की प्रेरणा लेनी है, यह हर पाठक को स्वयं निश्चय करना है। लेकिन एशियाई तथा अफ्रीकी साहित्य हमारे देश के साहित्य से सामाजिक एवं साहित्यिक पृष्ठभूमि में थ ड़ा-बहुत भिन्न है। इसलिए मैंने जो काशीनाथ सिंह की कहानियाँ पढ़ीं, उनसे मैंने क्या सोचा या महसूस किया, वह भी शायद भारत के पाठकों से भिन्न होगा। इसी कारण से काशीनाथ सिंह की कहानियों की मेरी समीक्षा अर्थहीन नहीं होगी।

Scanned with CamScanner

1. एक बूढ़े की कहानी

बाढ़ की पाँचवीं रात को एक फुटपाथी बुडढा फुटपाथी युवकों को बलात्कार की कहानी सुनात है। वे लोग गंदी बातें तो करते हैं फिर भी बुड्ढे के मन की संवेदनशीलता बहुत कोमल और नीतिपूर्ण प्रतीत होती है। लेखक के इस चित्रण से भारत के निम्न वर्ग की परिस्थिति तथा उन लोगों की भावनाओं का अनुमान लगाया जा सकता है। लेखक जो रात को फुटपाथ पर गंदी बातें करते हैं उन दलित वर्ग के लोगों का चित्रण करना चाहते थे कि नहीं ? लेखक निम्न वर्ग के लोगों के गंदे वार्तालाप से भी कहीं अधिक गंदी बात पाठकों के सामने पेश करना चाहते होंगे। वह यह है कि बुड्डा युवकों से मारा जा रहा है उसको देखते हुए भी खामोश रहता 'मैं' अर्थात् उन लोगों से अलग समझदारी 'मैं'। 'मैं' सोचता है कि मैं उन फुटपाथी जीवों की तुलना में अलग हूँ। मकानवाले 'मैं' का स्वार्थी भाव तथा समझदार को लेखक ने चित्रण करना चाहा होगा और वह दृष्ट पाठको के मन में उभर आती है।

2. हस्तक्षेप

इसमें झगड़ा-फ़साद से मजा लेने वाले एक छोटे से मुहल्ले के लोगों के दैनिक जीवन का दृश्य चित्रित किया गया है। इसमें लेखक ने उस मुहल्ले के लोगोंकी तुच्छता तथा भद्देपन को स्पष्ट रूप से चित्रित किया है, वह भी अपनी ममता और सहानुभूति के साथ। इस ममता और सहानुभूति के भाव से इस कहानी को पढ़ने में चेहरे पर मुस्कराहट उभर आती है। झगड़ा-फसाद करनेवालों के बीच में बकवास करते-करते आते जाते लड़के के मन में एक प्रकार का निस्सीम कोमल भाव प्रतीत होता है। इस प्रकार की भावना भारत के भविष्य की एक 'आशा" होगी और इसकी अभिव्यक्ति करना लेखक का मूल उद्देश्य होगा।

यह भारत के हिन्दू-मुसलमानों के बारे में हमें सन् 1947 के भारत पाकिस्तान विभाजन के दौरान साम्प्रदायिक दंगों अथवा विभाजन के बाद हुई घटनाओं की याद दिलाती है। इस तरह की साम्प्रदायिकता अंग्रेजी शासन में अंग्रेजी उपनिवेशवादियों के द्वारा लोगों के विभाजन हेतु बनाई गई थी और अब भी उस वक्त के साम्प्रदायिक दंगों के प्रभाव से कभी-कभी तनाव भी पैदा होता है। परन्तु साधारणतः दोनों शान्तिपूर्ण ढंग से रहते हैं। भारत की जनसंख्या में से मुसलमानों को आबादी 10 प्रतिशत है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले हिन्दी साहित्य में मुसलमानों का जीवन चित्रण बहुत किया गया था, पर विभाजन के बाद उनका चित्रण लगभग शून्य के बराबर हो गया। इस प्रकार की प्रवृत्ति के विपरीत इस कहानी में मुसलमान "रसूलमियाँ" को नैतिक व्यक्ति बनाया गया है। यह इस कहानी की एक विशेषता है, परन्तु इसकी तुलना में बहुसंख्यक हिन्दू की बिगड़ी हुई नैतिकता की समालोचना करना उचित नहीं है। लेखक हिन्दू-मुसलमान की साम्प्रदायिता को पार कर मुहल्ले में बसने वाली साधारण जनता के दैनिक जीवन को सहानुभूति के साथ चित्रित करता है। "भाइयो, सिर्फ पाँच मिनट" का वाक्य और 'बूट हौस' में नाई का रहना "हिन्दू कटिंग सैलून" में चटाइयाँ बीनने वाले के रहने की अजीब सी बात कहानी पढ़ने के बाद सब मालूम हो जाती है। इस प्रकार का प्रयोग लेखक ने इस कहानी में किया है और यह सफल हुआ है।

Scanned with CamScanner

3. चोट

यह गाँव में एक साथ पढ़े-लिखे लड़कों को कहानी है। ठाकुर जाति के लड़के और गड़रिए के लड़के की पढ़ाई खत्म होने के बाद एक रेस्तराँ में मुलाकात होती है। अब गड़रिए का लड़का किसी सरकारी दफ्तर का चपरासी बन गया था और ठाकुर का लड़का रेस्तराँ का नौकर। नौकरी की दृष्टि में रेस्तराँ की नौकरी से सरकारी दफ्तर की चपरासी ऊँची है। यह कहानी इस प्रकार के वर्ग की अदल बदल से पैदा हुई दोनों लड़कों की मनोवैज्ञानिक भावना का चित्रण है। चपरासी और रेस्तराँ के नौकर में इतना अन्तर नहीं है। दोनों निम्न वर्ग की जनता हैं। फिर भी एक दूसरे को नीचा दिखाना चाहते हैं। इस प्रकार की भावना से झगड़ा उत्पन्न हो जाता है। दोनों के झगड़े में रेस्तराँ के मालिक और नौकर का संबंधी भी शामिल हो जाते हैं। आखिर ठाकुर के लड़के को गड़रिए के लड़के से माफी माँगनी पड़ी पर उस वक्त अपने साथियों, जिन लोगों के साथ तीन साल गुजारे थे, की उदासपूर्ण नजर देखकर ठाकुर का लड़का पूरी ताकत से मालिक के जबड़ पर एक घूंसा मारकर बाहर चला जाता है। इस कहानी में चित्रित निम्न श्रम वर्ग की भावना देखने से मेरे मन में जापान के छोटे मुहल्ले के लघु कारखाने में काम करने वाले युवा मजदूरों की परिस्थिति एवं भावना भी याद आती है और मेरे दिल में दर्द होता है न जाने क्यों ! दो गरीब लड़कों के आपस में आघात पहुँचाने की पृष्ठभूमि में परम्परागत जाति प्रथा एवं आधुनिकता मिश्रित समाज का यथार्थ है। कहानी "चोट" स्वयं "आधुनिकीकरण" से लगी चोट का दर्द है।

4. निधन

इस कहानी में चित्रत नीम का पौधा बाबू के लिए जीने को आशा का प्रतीक है। लगता है कि वह उनका बहुमूल्य पदार्थ है। इसके विपरीत जो आंधी पौधे को उखाड़ कर तोड़ देती है यानी बाबू की आशा को छिन्न-भिन्न कर देती है, वह हिंसा कही जा सकती है। उसे ध्यान में रखकर पढ़ें तो आँधी को हिंसा सामाजिक या राजनैतिक हिंसा प्रतीत होता है। जो बाबू ने नीम के पौधे पर कल्पना की वह लेखक के समाज-परिवर्तन अर्थात् 'मानवता की मुक्ति' के प्रतिबिम्ब के आधार पर की गई है। इस कल्पना में प्रकृति के प्रति साधारण आदमी का वात्सल्य भाव और लोगों के प्रति नीति की अभिव्यक्ति होती है। लेखक ने इनको भारत के विशिष्ट बुड्ढे द्वारा चित्रित किया। शायद बाबू की भावना स्वयं लेखक की भावना होगी। इसके साथ लेखक इस कहानी द्वारा तेज गति से आने वाले आधुनिकीकरण की बाढ़ से घटित देशी जीवन के भाग्य को सोच कर आधुनिकता का विरोध करना चाहता है। इस कहानी को पढ़ने से यह भी लगता है कि बहुमूल्य पदार्थ की रक्षा करने से न कर सकती साधारण जनता का जीवन, जिसकी निर्बलता हमारे मन को उत्तेजित करती है।

5. चाय घर में मृत्यु

इसमें एक विधवा की मृत्यु का चित्रण है। वह जिन्दगी भर काम करते-करते अपनी मृत्यु के वक्त भी सफलता की चिन्ता करके और कुछ दिन जीने की आशा रखती है। लेखक ने मृत्यु का यथार्थवादी दृष्टि से अच्छी तरह वर्णन किया है। एक साधारण जनता की मृत्यु की गंभीरता की तुलना में चायघर में बताई गई मृत्यु की गंभीरता कितनी हल्की है।

Scanned with CamScanner

६. अपना मोर्चा

इस उपन्यास में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में सन् 1967 में हुए छात्र आन्दोलन के आधार पर शहर तथा विश्वविद्यालय की "आधुनिकता" का चित्रण किया गया है। विश्वविद्यालय में जो आशाहीन युवक उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं वह शिक्षा समाज में उपयोगी नहीं है, वे लोग उच्च शिक्षा प्राप्त करने की वजह से अपने गाँव में काम करना नहीं चाहते। जमीन, श्रम और जनता से अलग होकर देशी जीवन में जीने की भावना खोए उन युवकों को आधुनिकता की माया में अपना अस्तित्व ढूँढना पड़ता है और इस आधुनिकता की माया में उन्हें जीना ही पड़ेगा।

इस उपन्यास का नायक दुःख से भरे स्वरों में युवकों के पतन के बारे में बोलता है जो आधुनिकता से उत्पन्न होती है। उनकी आशाहीनता तथा पतन की पृष्ठभूमि में भारतीय समाज की सुधारहीन गरीबी है और उपनिवेशवादी शासन में शुरू हुआ आधुनिकीकरण है। आज की आधुनिकता उस शासन की आधुनिकता को बिना तोड़े होता है यानी आज की आधुनिकता शुद्ध भारतीय आधुनिकता नहीं है। शिक्षा के संदर्भ में कहा जा सकता है कि उपनिदेशवादी शासनकालीन शिक्षा उस सरकार के लिए सेवा करने वाले तथा जनता का शोषण करने वाले भारतीय अधिकारी बनाने के लिए थी। बिना क्रांति के स्वतंत्रत और आधुनिकता इस शिक्षा प्रणाली को परिवर्तित नहीं कर सकी। इसलिए छात्र समझते हैं कि शिक्षा पाने से बिना श्रम के अच्छी नौकरी मिल सके और अच्छा वेतन मिल सके। अर्थात् छात्र जितनी उच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं उतना ही वे लोग अपने घर, गाँव तथा अपने वर्ग से दूर होते जाते हैं। जो नायक मध्य वर्ग का शिक्षित आदमी है वह गाँव छोड़कर विश्वविद्यालय में अध्यापक बन गया है। विश्वविद्यालय का अध्यापक होकर अच्छा वेतन लेने के कारण नायक स्वयं आधुनिकता का मार्गदर्शक है। नायक की वितृष्णा भरी नजर सिर्फ अपने सहयोगी अध्यापकों पर ही नहीं पड़ती जो बिना किसी संदेह के अर्थहीन शिक्षा दे रहे हैं, बल्कि अपने ऊपर भी पड़ती है जो स्वयं इस प्रकार के शिक्षण पर प्रश्नचिन्ह लगाता है। बौद्धिक आदमी होने के नाते सिर्फ सोचता ही रहता है "मैं यह सब देखता हूँ और सोचता हूँ.....सोचता हूँ और देखता हूँ और घर लौटता हूँ तो निढाल पड़ जाता हूँ।" नायक अपने आप परेशान हो जाता है। नायक के विपरीत ज्वान देशी जीवन तथा जनता की ओर से आधुनिकता पर सीधा हमला करता है। लेखक 'ज्वान' के मुँह से जनता के संघर्ष को प्रतिबिम्ब और भारत के भविष्य के समाज को बतलाता है।

जहाँ तक भारतीय छात्र आन्दोलन का सवाल है, मेरे विचार में भारतीय छात्र आन्दोलन जनता के साथ समाज व्यवस्था बदलने के लक्ष्य से कहीं अधिक अपने विशेष अधिकार, दूसरे शब्दों में छात्र नायक अधिकार लेकर अपने कालेज एवं विश्वविद्यालय के जनतान्त्रिक परिवर्तन और अपने हितों के लिए चलता है। इस प्रकार की पृष्ठभूमि में राजनैतिक संघष होता है अर्थात् कांग्रेस पार्टी एवं गैर कांग्रेस पार्टी का परस्पर विरोध। कांग्रेस पार्टी स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से मार्च 1977 तक भारतीय शासन चलाती आ रही थी। इसी दौरान राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों का उच्च पद अर्थात् कुलपति का पद भी सत्ता के हाथ में था। छात्र आन्दोलन का लक्ष्य गैर कांग्रेस पार्टी के साथ मिलकर कांग्रेस पार्टी गुट के कुलपति के इस्तीफे की माँग का अभियान चलाना था। कांग्रेस पार्टी नेहरू युग के समाजवादी एवं अंतर्राष्ट्रीयवादी मार्ग पर हो अथवा गैर कांग्रेस पार्टी जनवादी मार्ग पर चलती हो, दोनों बुनियादी तौर पर अल्पसंख्यक पूँजीपतियों

Scanned with CamScanner

के हितों के लिए है। शिक्षा सस्थान में भी स्थिति में कोई अन्तर नहीं है। छात्र आन्दोलन के नेता होने से नेतागण बाहर के राजनैतिक संगठनों से संबंध रख सकते हैं और इस सम्बन्ध से कभी राजनैतिक पद अथवा नौकरी भी प्राप्त कर सकते हैं।

इसलिए वे लोग भी अपने हितों के लिए सोचते हैं कि कुछ करना ही चाहिए। इसीलिए छात्र संघ के नेता बोलते हैं, 'आठ साल बाद जब हमारे हाथ युनियन वापस आई है तो कुछ हो जाना चाहिए।' और 'कुछ' होने के लिए भुखमरी, सूखा, गरीबी, मुद्रास्फीति जैसे जनता के जीवन से संबंधित विषय छात्र आन्दोलन के विषय नहीं बने। अत: "कुछ" करने के लिए नेतागणों ने लोकसभा में आने वाले भाषा विधेयक को चुन लिया। नेताओं के हितों के लिए "कुछ" करने के आन्दोलन के खिलाफ जनता की ओर से जनता के हितों के लिए संघर्ष करने को लाल और युवा ने कहा। अंग्रेजी उपनिवेशवादी शासन में शासकीय भाषा अंग्रेजी थी। इसलिए अंग्रेजी के खिलाफ आन्दोलन चलाना जन-मुक्ति संग्राम का एक महत्वपूर्ण अंश बना था। अंग्रेजी सरकार ने देश को रियासत और केन्द्रीय शासित राज्यों में विभाजित किया था। इसके प्रति गैर उपनिवेशवाद एवं गैर रूढ़िवाद के संघर्ष ने जनभाषा के आधार पर प्रदेश के विभाजन की माँगा। स्वतन्त्रता संग्राम में भाषा ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई परन्तु अब भाषा के संदर्भ में जो युवा और लाल बोलते हैं वह अंग्रेजी उपनिवेशवादी शासनकाल से कुछ भिन्न है। लाल कहता है :—"भाषा का अर्थ है जीने की पद्धति, जीने का ढंग। भाषा यानी जनतन्त्र की भाषा, जनतान्त्रिक अधिकारों की भाषा, आजादी और सुख जिन्दगी के हक की भाषा।" इन वाक्यों से स्पष्ट है कि अंग्रेजी के चले जाने के बाद भी जनता को मुक्ति नहीं मिली। उपनिवेशवादी शासन चले जाने के बाद अपने देश में नया शासन चलता है तब से नया वर्ग संघर्ष भी पैदा हो जाता है। खैर, भाषा आन्दोलन कांग्रेस पार्टी के प्रति असंतोष की भावना को बदलने के लिए किया गया था। आन्दोलन असफल होने के अगले दिन बरगद के नीचे इस उपन्यास के पात्र इकट्ठा होते हैं। हमेश 'जवान, जवान' पुकार कर संबोधित करने की आदत से लगाया गया 'ज्वान' नामक नायक, शायद युवकों के प्रति आशा के प्रतीक रूप में बनाया गया नायक 'युवा' 'लाल' और नायिक रेखा भादुड़ी हैं। वे लोग सब के सब लेखक के आदर्शपूर्ण विचार से बनाए गए पात्र हैं। रेखा भादुड़ी असली महिला का नाम है परन्तु असली रेखा भादुड़ी बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में नहीं पढ़ती। उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय में छात्र आन्दोलन का नेतृत्व किया था। महिला की असामाजिकता कभी-कभी उपन्यास का विषय बनी है। इस लेखक ने भी महिला के आदर्श के रूप में उनका नाम इस्तेमाल किया है। ये नायिका, नायक लेखक के आदर्शपूर्ण विचार के आधार पर बनाए गए थे, इसलिए उन लोगों का अस्तित्व इस उपन्यास में चित्रित किए गए अन्य पात्रों की तुलना में बहुत अस्पष्ट प्रतीत होता है। परन्तु आधुनिक साहित्य को यथार्थवादी दृष्टि से देखें तो इस प्रकार की अस्पष्टता महसूस की जाती है। मैं पहले लिख चुका हूँ कि यह उपन्यास सन् '67 के छात्र आन्दोलन के आधार पर लिखा गया है। इसलिए उपन्यास में लिखा गया छात्र आन्दोलन यथार्थ से इतना भिन्न नहीं है, परन्तु यथार्थ और कहानी में ज़रूर अन्तर होता है और होना ही चाहिये। क्योंकि इस अन्तर में ही लेखक की कल्पना (इमजिनेशन) उभर कर आती है। अगर साहित्य की मौलिक कृतियों अर्थात् रचनाओं में शब्दशक्ति कितना यथार्थ तक पहुँचकर उसे प्रभावित करेगी, इसी दृष्टि से देखें तो इन नायिका-नायिकों का पात्र बहुत महत्वपूर्ण और अस्पष्ट अस्तित्व स्पष्ट हो जाता है। लेकिन यथार्थ जीवन में हम लोग इस तरह के आदमियों से भी न मिलकर अकेले मददहीन संघर्ष कर रहे हैं। इसलिए जो ज्वान जोर से चिल्लाता है :—"क्या ये बारी-बारी से होने वाले आन्दोलन एक साथ नहीं हो सकते?

Scanned with CamScanner

एक ही साथ और एक ही बात के लिए ?' परन्तु चिल्लाहट-चिल्लाहट में खत्म होकर कभी एक बात के लिए एक साथ काम नहीं चलता ।

इसलिए अंतिम अध्याय में नायक के अध्यापक ने निश्चय किया कि रायफल के प्रति कागज पर कम से कम "अपना मोर्चा" बनाना है । शत्रु और अपने को भी कभी माफ नहीं करता "अपना मोर्चा" भारतीय जनता को जैसे लाल बोलता है वैसे ही अपनी सामाजिक चेतना को जागरित कराने का मौका भी नहीं मिलता, वे लोग गरीबी के स्तर से भी नीचे का जीवन जी रहे हैं । जिस प्रकार के समाज में आदमियों का संयुक्त मोर्चा नहीं बना सकता, उस समाज में आपसी सबंधों को काटने की जाति प्रथा एवं आधुनिक समाज व्यवस्था होती है । संयुक्त मोर्चा के बारे में मुझे एक बात याद आती है कि सन् 1967 से 72 तक के नक्सलवादी आन्दोलन के दौरान बौद्धिक वर्ग और निम्न वर्ग के लोगों ने संयुक्त मोर्चा के रूप में इस आन्दोलन को चलाया था और इससे कांग्रेस पार्टी भयभीत हो गई थी । जापानी लोगों का आपसी संबंध भी भारत जैसा ही है । इसलिए अब युग आ गया है कि जापान के बौद्धिक लोगों को भी कम से कम कागज पर अपने मोर्चा की स्थापना करनी चाहिए । इससे वे अपने अस्तित्व को अभिव्यक्त कर सकेंगे ।

अंतिम अध्याय पढ़ने के बाद मैंने महसूस किया कि यह कहानी कभी समाप्त नहीं होती । नायक के अध्यापक तीसरी मंजिल पर एक कंगूरे के पास खड़े होकर पुलिस द्वारा कब्जा किए गये कैम्पस देख रहे हैं जिसमें कोई छात्र-छात्राएँ नहीं हैं । इस परिस्थिति ने अलग होकर विश्वविद्यालय के अध्यापक लोग अपने हितों के लिए बातें करते हैं, विश्वविद्यालय खुल जाने के बाद छात्र-छात्राएं आते हैं, घटना पैदा हो जाती है, आन्दोलन शुरू हो जाता है, पुलिस आती है, विश्वविद्यालय अनिश्चित काल के लिए बन्द हो जाता है आन्दोलन असफल हो जाता है और अध्यापक तीसरी मंजिल पर एक कंगूरे के पास खड़े होकर कैम्पस देख रहे हैं । अंतिम अध्याय प्रथम अध्याय से जुड़ता है ।

भारतीय समाज के यथार्थ और लेखक की यथार्थ-पहचान को सोचें तो कहानी का अंतिम अध्याय और प्रथम अध्याय जुड़ जाने की बनावट सबसे अच्छा उपाय है और यथार्थपूर्ण है । प्रथम अध्याय से अंतिम अध्याय और फिर अंतिम अध्याय से प्रथम अध्याय को लौट जाने का यह चक्र चौरस स्तर में लिखा गया चक्र है या घूमते-घूमते कहीं चलने वाला चक्र है ? अगर घूमते-घूमते कहीं चलने वाला चक्र हो तो 'ज्वान' 'लाल' 'युवा' जैसे कल्पित अस्तित्व यथार्थ में अस्तित्व होकर मजबूत होने से होगा और अपने को और साधारण जीवन को गौर से देखकर अपने को बदलने से होगा ।

काशीनाथ सिंह ने पहले मुझसे कहा कि साहित्यकारों को जनता से प्रेरणा लेकर अपनी कृति द्वारा जनता को सिखाना चाहिए और साहित्य जनता का चित्रण करके जनता के लिए लड़ने की चीज़ होनी चाहिए । यह उनका मूल सिद्धान्त होगा । उनकी कहानियों में साधारण जनता अर्थात् मध्यवर्ग एवं निम्न-वर्ग के लोगों के दैनिक जीवन का चित्रण है । हिंसात्मक राजनीति और आधुनिकता के बीच में रहती जनता के दैनिक जीवन को सहानुभूति के साथ-साथ आलोचनात्मक दृष्टि से लिखने का प्रयास वे कर रहे हैं । वे जनता एवं शिक्षित लोगों से यह पूछते हैं कि इस स्थिति में जनता को क्या होना चाहिए और

Scanned with CamScanner

शिक्षित लोगों को क्या होना चाहिए क्योंकि जनता और शिक्षित लोग ही सामाजिक क्रान्ति की मुख्य भूमिका निभाने वाले हैं। साहित्यकार बिना क्रांति के स्वतन्त्रता से पैदा हुए वातावरण के कलेश और राजनीति से संन्यासी होकर रोमैंटिकवाद, रहस्यवाद और अस्तित्ववाद की ओर मुड़ गए थे, परन्तु अब उन वादों को पार कर इस समसामयिक युग की वस्तुस्थिति को सही रूप से चित्रित करने की साहित्य की प्रवृति पैदा हो रही है। इस साहित्य की धारा में काशीनाथ सिंह का नाम पहले आता है। लेकिन वे हिन्दी साहित्य की परम्परा से बिलकुल कटे हुए नये साहित्यकार नहीं हैं। वे अपने देश की परम्परा से जुड़े रह कर यथार्थवादी दृष्टि से लिखने के आलोचनात्मक समाजवादी लेखक हैं। उन्हें सन् 1973 के दिल्ली सेमिनार की घोषणा के अनुसार लिखने वाले जनवादी लेखक भी कहा जा सकता है। अंत में मैं और एक बात कहना चाहूँगा कि काशीनाथ सिंह पहले से पूँजीवादी साहित्य की उपेक्षा करते हैं और साम्यवादी लेखकों के बारे में उनका कथन है कि वे लोग अपनी कृतियों में ही क्रांति को सफल बना देते हैं, इसलिए यथार्थ पर वे लोग इतना ध्यान नहीं देते। यानी वास्तविक स्थिति की उपेक्षा करके कल्पनात्मक क्रांति के चित्रण करने से यथार्थ में कभी सही क्रांति की ऊर्जा पैदा नहीं होगी।

Scanned with CamScanner

जापानी जीवन और इकेबाना

र्‌योको कोज़िमा

मानव इतिहास के प्रारम्भ से ही मनुष्य सौन्दर्य की खोज करता आ रहा है। फूल को आदिकाल से सौन्दर्य का एक प्रतीक माना जाता है। खिलते फूलों का रूप, रंग और सुगंध मनुष्यों को आकर्षित करते हैं। इसलिए फूलों को देख कर उन्हें पसन्द करने का मनोभाव मनुष्यों के मन में पैदा होना स्वभाविक ही है।

जब मैं सन् 1979 में भारत घूमने गई थी तब मैं एक जापानी इकेबाना विशेषज्ञ होने के नाते भारतीय फूलों को देखने के लिए उत्सुक थी। भारतीय प्रतीक में अशोक, करवीर, कुंद, सुमन, पारिजात पुंडरीक आदि के फूल सुन्दर खिलते थे। भारत के लोग फूलों को चुन कर देवताओं को अर्पित करते थे। सुन्दर रंगों की फूलमाला बना कर भगवान के गले में डाल देते थे और फूल की पंखुड़ियाँ भगवान के चरणों के चारों ओर सजाकर प्रार्थना करते थे। फूल सजाने का यह तरीका जापाना तरीके से थोड़ा भिन्न था। जापान में सिर्फ फूल को ही सजाने के लिए इस्तेमाल नहीं करते। फूलों को टहनी व पत्तों समेत काट कर फूलदान में खड़ा करके सजाते हैं। इस प्रकार फूलदान में पेड़-पौधों को खड़ा करके सजाने की क्रिया को हम जापानी भाषा में 'हाना ओ इकेरु' कहते हैं। इसमें बाह्य वातावरण, सजाने वालों की भावना और पेड़-पौधों की सुन्दरता का पूरा पूरा ध्यान रखा जाता है और इस प्रकार बनाई गई रचना को इकेबाना कहा जाता है। अर्थात् इकेबाना सृजन का निष्कर्ष है।

आजकल जापानी इकेबाना विदेशों में बहुत लोकप्रिय है। हमारे संस्थान में भी इकेबाना सीखने के लिए विदेशों से कई लोग आते जाते हैं। मैं इस पत्रिका में जापानी इकेबाना के उद्‌भव और विकास के बारे में संक्षिप्त परिचय देना चाहती हूँ।

इकेबाना कला का उद्‌भव और विकास

जापानी प्राकृतिक परिस्थिति काफी भिन्न है। जापान में चार ऋतुएँ होती हैं। वसंत, ग्रीष्म, शरद, और जाड़ा। लेकिन ग्रीष्मकाल को भी पूर्व-ग्रीष्म, ग्रीष्म और उत्तर-ग्रीष्म में विभाजित किया जा सकता है। इस प्रकार और अन्य तीन ऋतुओं को भी कई तरह विभाजित किया जा सकता है। जापान में ऋतुओं का सिर्फ फूलों से ही गहरा संबंध नहीं, बल्कि जापानी लोगों के रहन-सहन से भी गहरा संबंध है। उदाहरण के लिए विश्वविख्यात जापानी कविता शैली 'हाइकु' का ऋतुओं से गहरा संबंध है। हाइकु में ऋतु से संबंधित संकेत-बोधक प्रतीक शब्द का उल्लेख होना अनिवार्य है। इस ऋतु के संकेत-

Scanned with CamScanner

बोधक शब्द से पाठक हाइकु में अभिव्यक्त किये गए प्राकृतिक वातावरण का अनुमान लगा सकता है। जापान भौगोलिक दृष्टि से इतना बड़ा देश नहीं है जितना भारत। इसलिए पूरे जापान में ऋतुओं का विशेष अन्तर नहीं है। देश के दक्षिण छोर से उत्तरी छोर तक एक महीने में ही वसंत फैल जाता है और इसी प्रकार जाड़ा उत्तरी छोर से दक्षिण छोर तक। इसलिए ऋतु संबंधी अनुभव जापानी लोगों में लगभग समान ही है और साथ ही ऋतु परिवर्तन को महसूस करने की भावना भी समान रूप से जापानी लोगों के पास है। पेड़-पौधों में होने वाले परिवर्तनों को देखकर प्राचीनकालीन जापानी लोगों ने परिवर्तित ऋतु को महसूस किया और इस परिवर्तन में जीवों के परिवर्तन को भी महसूस किया। प्राचीनकालीन जापानी लोगों के धार्मिक जीवन में विश्वास किया जाता था कि भगवान अलग दुनिया में रहता है अथवा समुद्र पार एक पवित्र स्थान में रहता है। इस युग के लोगों के विचार में मनुष्य को दुनिया सिर्फ अपनी भूमि या अपने देश तक सीमित थी। भगवान दूसरी दुनिया में रहता था। इसलिए यदि सहायता लेने के लिए भगवान की जरूरत हो तो दूसरे जगत से भगवान को बुलाना पड़ता था। इसके लिए भगवान के ठहरने की जगह तैयार करने की आवश्यकता पड़ी। इसके रहने के लिए सर्वदा हरा रहने वाला पेड़ जैसे चीड़ का पेड़ चुना गया।

सर्वदा हरा रहनेवाला पेड़ देखकर समय का परिवर्तन महसूस नहीं किया जा सकता है। और इस अपरिवर्तन में प्राचीनकालीन जापानी लोगों ने जीव के अमरत्व को महसूस किया और इस का समन्वय दैव-अमरत्व में किया जाने लगा। यानी अमर भगवान अमर पेड़ में ही ठहर सकता है। इसी विचार से सर्वदा हरा रहने वाला पेड़ पवित्र माना जाने लगा। इसके विपरीत पतझड़ी पेड़ में जापानी लोगों ने बदलती जिन्दगी को देखा। भगवान अमर है पर जीव अमर नहीं है। पतझड़ी पेड़ों की जिन्दगी इन्सान की तरह है। खिलता फूल जिन्दगी का सबसे भरपूर वक्त है। खिलते फूलों की पंखुड़ी के गिरने को देखकर जापानी लोगों ने फूलों की जिन्दगी की करुणता को महसूस किया। इस प्रकार जापानी लोग फूल-पौधों के परिवर्तन में अपनी जिन्दगी भी देखते हैं। सम्भवतः उस विचारधारा ने इकेबाना के जन्म की पृष्ठभूमि का निर्माण किया, लेकिन प्रकृति से पेड़-पौधों को लेकर उन्हें मनुष्य द्वारा सजाने का कार्य बौद्ध धर्म के आगमन के बाद ही से होने लगा। सन् 538 में बौद्ध धर्म जापान में आया और राज दरबार के लोगों ने इसे स्वीकार किया। इस युग से फूल-पौधों को फूलदान में खड़ा करके सजाने का रिवाज आम हो गया था। यह बौद्ध धर्म में पूजा के लिए पुष्पांजलि की प्रथा द्वारा प्रचलित हुआ। पुष्पांजलि का यह रूप बौद्ध धर्म के माध्यम से भारत से चीन होकर जापान आने तक शायद एक परिवर्तित रूप में पहुँचा होगा। उस काल की पुष्पांजलि ने बाद के जापानी लोगों के दैनिक जीवन में इकेबाना के रूप में विकसित होकर एक अविच्छिन्न स्थान बना लिया। फूल-पौधों को सजाने के तरीके को सिखाने के कई विशेषज्ञ भी हुए और इकेबाना के सिद्धान्तिक शास्त्र भी रचे गए। उन सिद्धान्तों में केवल फूल-पौधों को सजाने का तरीका ही नहीं, बल्कि सज्जा के दार्शनिक पहलू पर भी बहुत कुछ लिखा गया। इकेबाना सिर्फ फूल-पौधों को सजाने की कला नहीं, बल्कि सृजन का एक दर्शन भी है।

अब मैं इकेबान सिद्धान्तों और उन के दार्शनिक पहलू का परिचय देती हूँ।

Scanned with CamScanner

इकेबाना के सिद्धांत

पहले मैं इन सिद्धान्तों में प्रतिपादित पुष्प सजाने वाले कलाकार के विचारों और सज्जा की प्रमुख तकनीकों पर प्रकाश डालना चहूँगी।

नागेइरे—इस पद्धति में प्रकृति से फूल, पत्ते, टहनियाँ, घास इत्यादि को चुनकर उन्हें कम से कम विकृत कर फूलदान में सजाया जाता है। सजाने के वक्त इस बात का ध्यान रखा जाता है कि सज्जा में इस्तेमाल की जाने वाली सामग्री का प्रकृत गुण नष्ट न होने पाये और सुन्दर पुष्प सज्जा द्वारा प्रकृति के सौन्दर्य को दर्शाया जा सके।

इकेहाना—इस पद्धति में सज्जा में उपयोग में लायी जाने वाली सामग्री को कलाकार अधिक सुन्दर रूप देने के लिए कुछ तोड़ मरोड़ कर सकता है। परन्तु ऐसा करने में उस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि यह तोड़-मरोड़ देखने वाले को नज़र न आने पाए और साथ ही सामग्री अपना प्राकृतिक सौन्दर्य भी न खोने पाए ताकि उस प्रकार प्रकृति को उसके सुन्दरतम रूप में दर्शाया जा सके।

मोरिबाना—इस पद्धति में प्रकृति से फूल, पत्ती, टहनी, इत्यादि सामग्री लेकर कलाकार अपने मनोभावों को प्रकट करने की चेष्टा करता है। सामग्री में केवल जापानी ही नहीं वरन् गैर जापानी मूल के फूल-पौधों का भी इस्तेमाल किया जा सकता है। मोरिबाना पद्धति ने इकेबाना कला को एक नया मोड़ दिया जिससे कालान्तर में आधुनिक इकेबाना कला का रूप ले लिया।

इकेनोबो पुष्प-सज्जा कला के गुरु सेन्ओ इकेनोबो के अनुसार 'इकेबाना के विद्यार्थी को वनस्पतियों की परख, पुष्प के सौन्दर्य के मर्म, ऋतुओं के परिवर्तन का बोध होना चाहिए और इन सब का ध्यान रखते हुए ही पुष्प सज्जा की जानी चाहिए'। कुछ सुन्दर फूल एकत्र कर उन्हें फूलदान में रख देना एक बात है परन्तु साधारण पुष्प कलात्मक ढंग से फूलदान में सजा कर सौन्दर्य की सृष्टि करना एक कला है। इसलिए मैं यहाँ इकेबाना देखने वालों से अनुरोध करना चाहूँगी कि इकेबाना कला का रसास्वादन करते समय वह केवल उसके रूप सौन्दर्य का ही रस न लें बल्कि इस की रचनात्मकता के मर्म को समझकर उसका मूल्यांकन करने की चेष्टा करें।

इस हिन्दी निबंध के लिए मैं सम्पादक श्री सुजुकि एवं श्री के० सी० पाण्डे की आभारी हूँ जिन्होंने समय देकर मेरी हिन्दी का संशोधन किया।

Scanned with CamScanner

समीक्षा

विचार गोष्ठी "समकालीन भारतीय साहित्य एवं जनता"

योशिअकि सुजुकि

गत 29 मार्च को जापान अफ्रो-एशिया लेखक संघ की ओर से "समकालोन भारतोय साहित्य एवं जनता" शीर्षक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया था। जापान में भारतीय साहित्य को लेकर सार्वजनिक तौर पर आयोजित की गई यह प्रथम विचार गोष्ठो थी। इसमें जापान अफ्रो-एशिया लेखक संघ के सदस्य, भारतोय साहित्य एवं भारतीय भाषाओं के अध्ययन कर्त्ता, भारत में रुचि रखने वाले, जापानी साहित्यकार और साधारण जनता आदि लगभग एक सौ श्रोतागण उपस्थित हुए।

उद्घाटन भाषण में लेखक-संघ के उपाध्यक्ष श्री इचिरो हारियु ने कहा —"हमारे संघ ने साहित्य द्वारा राष्ट्रीय सोमाओं को पार कर एशियाई तथा अफ्रीकी देशों के बीच विचारों के आदान-प्रदान करने का उददेश्य निर्धारित किया है। सन् 1973 में हम लोगों ने अफ्रोकी देशों के लेखकों को आमंत्रित करके सम्मेलन का आयोजन किया था। अगली बार भारतीय लेखकों को आमंत्रित करके कई विषयों पर विचारों का आदान-प्रदान करने को योजना बना रहे हैं। लेकिन भारतीय साहित्य एवं भारतीय वास्तविकताओं के बारे में हमें कुछ भी जानकारी नहीं है। हम भारत को सिर्फ विश्व की संस्कृति के उद्भावक देश के रूप में पहचानते हैं। जाहिर है कि भारत में भारतीय वास्त वकताएँ हैं। उन वास्तविकताओं की जानकारी के बिना हम भारतीय लेखकों के साथ विचारों का आदान प्रदान नहीं कर सकते। भारतीय लेखकों को आमन्त्रित करने की तैयारी के रूप में हम लोगों ने इस विचार गोष्ठो का आयोजन किया है। इसमें कई लोग उपस्थिति हुए हैं और विचारों के आदान प्रदान से हमें कुछ न कुछ भारतीय साहित्य एवं भारतोय वास्तविकताओं की जानकारी मिलेगी।"

विचार गोष्ठी के वक्ताओं के रूप में भारतीय साहित्य और भारतीय भाषाओं के चार विशेषज्ञों ने भाग लिया। एशिया-अफ्रीका भाषा विद्यापोठ के प्राध्यापक श्री कोकि नागा, ताकुशोकु विश्वविद्यालय के प्राध्यापक श्री तेइजि साकाता, मेइजो विश्वविद्यालय के प्रोफेसर श्री तात्सुओ मोरिमोतो और होसेइ विश्वविद्यालय के प्राध्यापक श्री कल्याणदास गुप्त थे।

विचार गोष्ठी का आरम्भ इस प्रश्न से शुरू हुआ कि आप किसलिए भारतीय साहित्य का अध्ययन कर रहे हैं और क्यों आपने भारतीय साहित्य का अध्ययन शुरू किया ?

श्री नागा ने भारत में अपने अनुभवों से उदाहरण देकर कहा :—

Scanned with CamScanner

"भारत जाने से पहले हम महात्मा गाँधी के बारे में जानते थे। वे स्वतंत्रता संग्राम के नेता थे और इस संग्राम में उन्होंने सत्याग्रह, अहिंसा, भूख हड़ताल आदि अपनाये। परन्तु भारत जाकर भारतीय वास्तविकताओं को देख कर मुझे बड़ा धक्का लगा, क्योंकि वहाँ वास्तविकता यह थी कि जो लोग खाना खा सकते थे उन लोगों के लिए खाना बंद करके भूख हड़ताल करना सम्भव था पर जिन लोगों को अकसर कम खाकर या भूखा रह कर सोना पड़ता था, उन लोगों के लिए भूख हड़ताल का कोई अर्थ नही, उन लोगों के लिए हर रोज भूख हड़ताल थी। मुझे भारतीय जनता को समझने के लिए भारतीय भाषा यानो हिन्दी सोखने की आवश्यकता महसूस हुई और मैं हिन्दी साहित्य में चित्रित भारतीय लोगों का जीवन और वास्तविक भारत को तुलनात्मक दृष्टि से देखने का प्रयास करता हूँ।" श्री नागा विशेष रूप से हिन्दी साहित्य के आंचलिक उपन्यासों का अध्ययन कर रहे हैं। बाद में उन्होंने फणीश्वरनाथ रेणु और प्रेमचन्द की कहानियों में चित्रित भारतीय किसान और आज के भारतीय गाँव के यथार्थ का परिचय दिया।

श्री तेइजि साकाता ने जापानी लोगों के सांसारिक दृष्टिकोण की आलोचना करके अपने अध्ययन के बारे में अवगत कराया। इस वक्त उन्होंने एक चुनौती दी कि लिखित आधुनिक हिन्दी साहित्य में भारतीय जनता का यथार्थ जीवन चित्रित किया जाता है कि नहीं, अर्थात् उनका कथन था कि लिखित साहित्य में चित्रित आदमी भारतीय आदमी नहीं प्रतीत होता किसी दूसरे देश का आदमी प्रतीत होता है। और उन्होंने यह भी कहा कि बौद्धिक आदमी का मतलब पढ़े लिखे आदमी नहीं है। अनपढ़ लोगों में भी बौद्धिक आदमी होते हैं, शिक्षित लोगों द्वारा लिखित साहित्य से कहीं अधिक मौखिक साहित्य और मध्यकालीन साहित्य जनता के निकट हैं।

श्री मोरिमोतो ने कहा "द्वितीय महायुद्ध के बाद यानी जापान की हार के बाद मैं जीने की आशा खोज रहा था। इस वक्त मुझे रवीन्द्रनाथ ठाकुर का काव्य संग्रह "गीतांजलि" मिल गया और पढ़कर इससे बहुत प्रभावित हुआ। मेरे सामने चित्रित किया गया भारत गुलाबी रंग का भारत था। इसलिए मेरे अध्ययन की शुरूआत प्रथम दो विशेषज्ञों से कुछ भिन्न है।" श्री मोरिमोतो शान्तिनिकेतन विश्वविद्यालय में जापानी भाषा के प्राध्यापक रहे और अब रवीन्द्रनाथ ठाकुर पर अनुसंधान कर रहे हैं।

श्री कल्याणदास गुप्त ने अपना परिचय देते वक्त जापानी श्रोताओं के सामने भारतीय आदमी की पहचान की एक विशेषता पेश की। उन्होंने अच्छी जापानी भाषा में अपना परिचय दिया। "मैं बंगला वासी हूँ और भारतीय भी हूँ।"

जापान में जापानी भाषा ही बोली जाती है और जापानी लोग अपने को जापानी ही समझते हैं परन्तु भारत के लोग अपनी पहचान को केवल अपने देश से नहीं, बल्कि अपने प्रांत अपनी मातृ भाषा से भी संबद्ध रखकर करते हैं। इस विचारधारा में भारत और भारत के लोगों को समझने का रहस्य छिपा है। इस संदर्भ में श्री मोरिमोतो ने साहित्य को लेकर अच्छा उदाहरण दिया कि जापानी लोग जापानी भाषा में ही साहित्य लिखते हैं इसलिए अपने साहित्य पर इतना ध्यान नहीं देते। कानाडा में अंग्रेजी और फ्रेंची में साहित्य लिखा जाता है फिर भी इसको कैनेडियान साहित्य कहते हैं, परन्तु भारत में ऐसा नहीं, जो लोग बंगला में साहित्य लिखते हैं तो वे उसको बंगला साहित्य, हिन्दी में लिखते तो हिन्दी साहित्य, तमिल

Scanned with CamScanner

में लिखते हैं तो तमिल साहित्य कहते हैं। हम साधारणतः भारतीय साहित्य कहते हैं तो हम इन भारतीय भाषाओं के साहित्यों में से किसको भारतीय साहित्य कहते हैं ? बंगला साहित्य में बंगला साहित्य की, हिन्दी साहित्य में हिन्दी साहित्य की, तमिल साहित्य में तमिल साहित्य की विशेषता होती होगी और भिन्नता भी होती होगी, पर उनमें समानता भी जरूर होती है। इसलिए बंगला भाषा में लिखित साहित्य बंगला साहित्य कहते हुए भी इसको भारतीय साहित्य कह सकते हैं। इस प्रकार की भिन्नता और समानता की विचारधारा को समझना भारतीय अनुसंधान के लिए अनिवार्य है।

साहित्यिक दृष्टि के संदर्भ में श्री मोरिमोतो ने और एक सवाल उठाया कि हम पश्चिमी देशों के साहित्य की चर्चा करते समय अपने देश के साहित्य और पश्चिमी देशों के साहित्य में साहित्यिक समानता देखने का प्रयास करते हैं पर भारतीय साहित्य के संबंध में क्यों साहित्य और जनता के संबंध पर बल देकर चर्चा करना चाहते हैं।

इस प्रकार का प्रश्न विचार गोष्ठी का शीर्षक निर्धारित करने के वक्त भी उठाया गया था। इस गोष्ठी के दो माह पहले आयोजन समिति बनाई गई थी। काफी चर्चा के बाद शीर्षक निर्धारित किया गया लेकिन समिति के सदस्यों में से बार-बार प्रश्न उठाया गया कि अफ्रीकी देशों और एशियाई देशों के साहित्य पर विचार करते समय क्यों साहित्य और जनता का संबंध जोड़ते हैं ? अफ्रीको-एशियाई देशों के साहित्य को शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से देखकर हमारे देश के साहित्य से तुलना करके चर्चा क्यों नहीं कर सकते ? हम लोगों की आशा थी कि समकालीन भारतीय साहित्य में चित्रित जनता और भरतीय वास्तविकताओं में रह रही जनता के बारे में जानकारी प्राप्त करने से समसामयिक युग में रहते हम लोग समकालीन भारतीय साहित्य की प्रवृत्ति, भारतीय लोगों का दृष्टिकोण ही नहीं, वरन् भारतीय वास्तविकताओं को भी जान सकेंगे। लेकिन हम लोगों की आशा निराशा में परिणित हो गई। क्योंकि भारतीय साहित्य जानने से पहले भारतीय वास्तविकताओं को जानने की आवश्यकता थी।

जापान की साधारण जनता वास्तविक भारत को नहीं जानती। प्रेमचन्द की कहानियों में चित्रित किए गये गाँवों और पात्रों के बारे में बताने से पहले इस कहानी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि बताने की आवश्यकता होती थी। इसलिए साहित्यिक चर्चा से अधिक भारतीय समाज की वास्तविकताओं को बताने की आवश्यकता हुई। इस का मतलब यह है कि भारत अथवा भारतीय लोगों को बिना समझे हम भारतीय साहित्य नहीं समझ सकते। परन्तु विचार गोष्ठी में भारतीय वास्तवकताओं को अवगत कराने के कारण साहित्यिक चर्चा कम हुई। इसके बारे में विचार गोष्ठी के बाद रेडियो जापान के इन्टव्यू के उत्तर में श्री नागा ने हिन्दी में कहा 'भारतीय साहित्य का परिचय देने से पहले भारतीय समाज अथवा कहानी की सामाजिक पृष्ठभूमि के बारे में बताना पड़ा, समयाभाव के करण भारतीय साहित्य का परिचय नहीं दे पाया इसलिए मेरे मन में असंतोष की भावना है।'

उनका कथन भी सच था पर वक्ताओं के बीच दृष्टि की भिन्नता भी मौजूद थी। आयोजन समिति के सदस्य डा० मासायुकि उसुदा ने इस गोष्ठी के बाद अफ्रोएशिया लेखक संघ द्वारा प्रकाशित "साप्ताहिक पोस्ट कार्ड" में लिखा कि विचार गोष्ठी में भाग लेकर वक्ताओं की चर्चा सुनने से एक असंतोष की भावना पैदा हुई। कारण क्या है ? वक्ताओं के बीच में दृष्टि की भिन्नता प्रकट हुई थी यानी वक्ताओं की रुचि साहित्य है या भारत ? इस गोष्ठी के समापन तक साहित्य और भारत को समन्वित

Scanned with CamScanner

किया भारतीय साहित्य का चित्र हम लोगों के सामने नहीं उभरा। भारत अथवा भारतीय लोगों को बिना समझे भारतीय साहित्य नहीं समझ सकेंगे लेकिन भारत अथवा भारतीय लोगों को समझने के अतिरिक्त साहित्यिक दृष्टि की आवश्यकता भी होती है।

उनका कहना सचमुच ठीक ठहरता है। क्योंकि हम लोगों के लिए भारतीय साहित्य भारतीय समाज या भारतीय लोगों को जानने का साधक ही नहीं, वरन् साध्य होना चाहिए।

इस गोष्ठी में उपस्थित श्रोताओं द्वारा भी कई सवाल उठाए गए। उनमें से प्रमुख था कि दलित वर्ग के लोगों की आवाज उठाने वाला साहित्य भारत में है कि नहीं ? इसका ठीक जवाब नहीं दे पाए थे।

समापन भाषण में जापान अफ्रो-एशिया लेखक संघ के अध्यक्ष श्री योशिए होन्ज्ञा ने, जिन्होंने सन् 1956 दिल्ली में आयोजित एशिया लेखक सम्मेलन का सभापतित्व निभाया था, उस वक्त के अनुभव बताते हुए भारतीय साहित्य की व्यापकता तथा गहनता पर बल दिया।

यह विचार गोष्ठी डेढ़ बजे से लेकर छः बजे तक चली थी फिर भी हम लोगों के सामने भारतीय वास्तविकताओं की गहनता ही उभर पाई और साहित्यिक चर्चा अधिक नहीं हुई। इसके कई कारण हैं। एक तो जापान में भारतीय साहित्य के अध्ययन कर्त्ताओं की कमी है। जापान में भारत संबंधी विशेषज्ञों में से भारतीय साहित्य के विशेषज्ञ एक या दो व्यक्ति ही होंगे। खेद की बात है कि ऐसे मौके पर हिन्दी साहित्य के विशेषज्ञ उपस्थित नहीं हुए। ऐसे मौके पर पब्लिक के सामने उपस्थित होकर भारतीय साहित्य का परिचय देना भी अनुसंधानकर्त्ता का कर्त्तव्य होगा।

श्रोताओं में जापानी साहित्यकार तथा आलोचक भी उपस्थित थे परन्तु भारतीय वास्तविकताओं के बारे में अधिक लेक्चर होने के कारण उन लोगों को भी खामोश रहना पड़ा होगा। अगर इस विचार गोष्ठी में भारतीय साहित्यकार उपस्थित होते तो साहित्यिक चर्चा और अधिक होती। जापान में भारतीय साहित्यकार नहीं हैं ऐसी बात नहीं है। वे अक्सर आते रहते हैं। आई० सी० सी० आर द्वारा जापान के विश्वविद्यालय में हिन्दी शिक्षण के लिए भारतीय साहित्यकार आते हैं। लेकिन मैंने अभी तक नहीं सुना कि विश्वविद्यालय द्वारा सार्वजनिक तौर पर भारतीय साहित्य के परिचय देने के लिए किसी भी आयोजन हुआ हो।

अगर भारतीय साहित्यकार जापान में आते हैं तो जैसे हम हिन्दी प्रेमी और जापानी साहित्यकार उनसे संपर्क स्थापित करना चाहते हैं इसी प्रकार भारतीय साहित्यकार भी जापानी साहित्यकारों से संपर्क स्थापित करना चाहते होंगे। अगर इस तरह की योजना से भारतीय साहित्यकार स्वयं परिचित नहीं तो विश्वविद्यालय की ओर से उन्हें भाग लेने के लिए कहा जा सकता है और संयोजक भी इस अनुरोध को अस्वीकार नहीं करेगा।

मोटे तौर पर इस विचार गोष्ठी से कई प्रकार के असंतोष की भावना उत्पन्न हुई। लेकिन एक अच्छा अवसर भी था कि जापान में भारतीय अनुसंधान की इन परिस्थितियों ने जापानी लोगों को चिन्तन का मौका दिया और श्रोतागण भारतीय वास्तविकताओं के बारे में जान सका।

Scanned with CamScanner

परिशिष्ट : 1

जापान में प्रकाशित हिन्दी एवं हिन्दो साहित्य संबंधो निबंधों की सूची

(सन् 1970 से 1979 तक)

1. "अज्ञेय की कविता "असाध्य वीणा", श्री० तोशिओ तानाका, इन्दोगाकु-बुक्क्योगाकु केन्क्यु, अंक 19-2, 1971
2. "आधुनिक भारतीय-आर्य भाषाओं की क्रियाओं के भूतकालिक रूपों के प्रकार्य—हिन्दी, उर्दू, बंगला के संदर्भ में—", श्री० तोमिओ मिज़ोकामि, ओसाका गाइकोकुगो दाइगाकु गाकुहो, अंक 23, 1971
3. "आधुनिक हिन्दी की संयुक्त क्रियाएँ", श्री० तोमिओ मिज़ोकामि, अजिअ-अफ्रिका बुन्पो केन्क्यु, अंक 2, 1974
4. "आधुनिक हिन्दी भाषा के क्रिया रूप", श्री० तेइजि साकाता, इन्दोगाकु-बुक्क्योगाकु केन्क्यु अंक 20-1, 1971
5. "आधुनिक हिन्दो में कारक वर्णन प्रणालो पर एक प्रस्ताव", श्री० तेइजि साकाता, गोगाकु केन्क्यु, अंक 4, 1971
6. "आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में साहित्य मंडल "परिमल", श्री० तोशिओ तानाका, इन्दोगाकु-बुक्क्योगाकु केन्क्यु, अंक 22-2, 1973
7. "आपातकाल में हिन्दो साहित्य", श्री० हिदेअकि इशिदा, बुन्गेइ तेन्बो, अंक 22, 1978
8. "उग्र और उनकी कृतियाँ", श्री० तोशिओ तानाका, तोक्यो गाइकोकुगो दाइगाकु रोन्श्यू अंक 20, 1971
9. "उत्तर भारत की लोक कथाओं में भाषा और शैली", श्री० तेइजि साकाता, इन्दोगाकु-बुक्क्योगाकु केन्क्यु, अंक 26-1, 1977
10. "उत्तर भारत में भजन व उसका वातावरण—एक गाँव के उदाहरण के आधार पर—", श्री० तेइजि साकाता, ताकुशोकु दाइगाकु रोन्श्यु, अंक 103, 1975
11. "उत्तर भारत के भजन में बोली और शैली", श्री० तेइजि साकाता, इन्दोगाकु-बुक्क्योगाकु केन्क्यु, अंक 25-1, 1976

Scanned with CamScanner

12. "एशियाइ बुद्ध धर्म का इतिहास" पंचम भाग, भारत के धर्म संप्रदाय, श्री० क्यूया दोइ एवं श्री० त्सुनेओ कुरोयानागि, कोसेइ शुप्पन, 1973

13. "कबीर—उनका जीवन और कृतियों का एक अध्ययन—", श्री० तोमोकि सातो, 1976

14. "कबीर और सत् गुरु", श्री० इन्शो कोबायाशि, इन्दोगाकु-बुक्क्योगाकु केन्क्यु, अंक 26-2, 1978

15. "कमताप्रसाद गुरु के "हिन्दी व्याकरण" में कारक वर्णन प्रणाली", श्री० तेइजि साकाता, इन्दोगाकु-बुक्क्योगाकु केन्क्यु, अंक 23-1, 1974

16. "खड़ीबोली और कौरवी—देवरानी जेठानी की कहानी में—", श्री० कात्सुरो कोगा, ओसाका गाइकोकुगो दाइगाकु, अंक 33, 1975

17. "ग्राम वासियों का इष्ट पुरुष राजकुमार—उत्तर भारत की लोक कथाओं के पात्रों का अध्ययन—", श्री० तेइजि साकाता, ताकुशोकु दाइगाकु रोन्श्यु, अंक 109, 1977

18. "जैनेन्द्रकुमार के उपन्यास (1) "सुनीता" और आत्म-औचित्य प्रतिपादन", श्री० हिदेअकि इशिदा, इन्दोगाकु-बुक्क्योगाकु केन्क्यु, अंक 27-2, 1979

19. "जैनेन्द्रकुमार के उपन्यास (2) "त्याग पत्र" से विश्रान्ति तक", श्री० हिदेअकि इशिदा, इन्दोगाकु-बुक्क्योगाकु केनक्यु, अंक 27-2, 1979

20. "तोता और बनिये की औरत—शुकसप्तति और उससे संबंधित एक लोक कथा का तुलनात्मक अध्ययन—", श्री० तेइजि साकाता,

21. "दक्षिण एशिया के भाषा समाज विज्ञान संबंधी अध्ययन का सर्वेक्षण", श्री० तेइजि साकाता, इन्दोगाकु-बुक्क्योगाकु केन्क्यु, अंक 24-1, 1975

22. "दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रों की हिन्दी—एक सर्वेक्षण—", (अंग्रेजी में) श्री० तोमिओ मिज़ोकामि, ओसाका गाइकोकुगो दाइगाकु गाकुहो, अंक 35, 1976

23. "पंजाब में द्विभाषिता—लायलपुर शहर के क्षेत्रीय कार्यों पर आधारित—", श्री० तोमिओ मिज़ोकामि, इन्दोगाकु-बुक्क्योगाकु केन्क्यु, अंक 26-2, 1978

24. "पॉल ह्वकर, "आधुनिक हिन्दी" की कुछ सहायक क्रियाओं के प्रकार्य" (मूल जर्मन भाषा से जापानी में रूपान्तरण तथा टिप्पणी) श्री० तोमिओ मिज़ोकामि, ओसाका गाइकोकुगो दाइगाकु गाकुहो, अंक 126, 1972, अंक 30, 1974, अंक 33, 1975

25. "बाज़ारू हिन्दुस्तानी : सरलीकृत बेसिक हिन्दी", श्री० कात्सुरो कोगा, ओसाका गाइकोकुगो दाइगाकु गाकुहो, अंक 29, 1971

26. "भारत की जाति-पत्रिकाओं का परिचयात्मक सर्वेक्षण", श्री० तेइजि साकाता, ताकुशोकु दाइगाकु रोनश्यु, अंक 100, 1975

Scanned with CamScanner

27 "भारत-पाकिस्तान के विभाजनकालीन हिन्दी साहित्य—भीष्म साहनी की कहानी "तमस"—", श्री० तोशिओ तानाका, इन्दोगाकु-बुक्क्योगाकु केन्श्यु, अंक 26-2, 1978

28. "भारत-पाकिस्तान के विभाजनकालीन हिन्दी साहित्य—राही मासूम रजा—", श्री० तोशिओ तानाका, इन्दोगाकु-बुक्क्योगाकु केन्क्यु अंक 27-2, 1979

29. "भारतवर्ष में अल्पसंख्यक भाषा भाषी वर्ग—उनका उदगम और वर्तमान स्थिति—", श्री० तेइजि साकाता, काइगाइ जिज्यो केन्क्युज्यो होकोकु, अंक 12, 1976

30. 'भारतीय साहित्य—देव युग से आज तक, एक संक्षिप्त परिचय—" (दूसरा संस्करण) डा० ओतोया तानाका व श्री तेइजि साकाता, पिताका प्रकाशन, 1977

31. "मुंशो नवलकिशोर", श्री० तोशिओ तानाका, एवं श्री० ताकेश सुजुकि, तोक्यो गाइकोकुगो दाइगाकु रोन्श्यु, अंक 24, 1974

32 "माता से बेटी को—उत्तर भारत की लोककथाओं का परम्परा अनुक्रम का एक उदाहरण—", श्री० तेइजि साकाता, ताकुशोकु दाइगाकु रोनश्यु, अंक 114, 1977

33. "यशपाल की कृतियाँ", श्री० तोशिओ तानाका, तोक्यो गाइकोकुगो दाइगाकु रोनश्यु, अंक 20, 1971,

34 "यशपाल साहित्य के अध्ययन को सामग्री के रूप में पत्रिका "विप्लव"", श्री० तोशिओ तानाका, इन्दोगाकु-बुक्क्योगाकु केन्क्यु, अंक 20-2 1972

35 "राहुल की आत्मकथा "मेरो जोवन यात्रा"—हिन्दी साहित्य की सामग्री के लिए", श्री० तोशिओ तानाका, इन्दोगाकु-बक्क्योगाकु-केन्वयु, अंक 24-2, 1976

36. "राहुल का "घुमक्कड़ शास्त्र" ", श्री० तोशिओ तानाका, इन्दोगाकु-बुक्क्योगाकु केन्क्यु अंक 25-1, 1976

37. "राहुल सांकृत्यायन की कृतियाँ" (1) (2), श्री० तोशिओ तानाका, तोक्यो गाइकोकुगो दाइगाकु रोनश्यु, अंक 26, 1976, अंक 28, 1978

38. "शांतिनिकेतन में हजारीप्रसाद द्विवेदी", श्री० तोशिओ तानाका, इन्दोगाकु-बुक्क्योगाकु केन्क्यु, अंक 23-2, 1975

39. "सूरसागर में गृहीत संस्कृत शब्द—चयन व समीकरण की दृष्टि से एक अध्ययन—", श्री० तेइजि साकाता, गोगाकु केन्क्यु, अंक 19, 1979

40. "सूरसागर में वल्लभ सम्प्रदाय को सैद्धान्तिक अभिव्यक्ति", श्री० योशिअकि सुजुकि, तोयोगाकु केन्क्यु, अंक 14, 1979

41. "हजारीप्रसाद द्विवेदो के ऐतिहासिक उपन्यास" श्री० तोशिओ तानाका, तोक्यो गइकोकुगो दाइगाकु रोन्श्यु, अंक 25, 1975

Scanned with CamScanner

42. "हास्य और मर्यादा—उत्तर भारत की हास्य कथाओं का अध्ययन —", श्री० तेइजि साकाता, ताकुशोकु दाइगाकु रोन्श्यु, अंक 116, 1978

43. "हिन्दी की प्रेरणार्थक क्रियाएँ" (हिन्दी में) श्री० कात्सुरो कोगा, ओसाका गाइकोकुगो दाइगाकु गाकुहो, अंक 42, 1978

44. "हिन्दी क्रियाविशेषण", श्री० क्युया दोइ, इन्दोगाकु-बुक्क्योगाकु केन्क्यु, अंक 26-2, 1978

45. "हिन्दी क्रियाओं में भूतकाल", श्री० तोमिओ मिज़ोकामि, इन्दोगाकु-बुक्क्योगाकु केन्क्यु, अंक 19-2, 1971

46. "हिन्दी भाषा में 'ह'", श्री० क्युया दोइ, इन्दोगाकु-बुक्क्योगाकु केन्क्यु, अंक 24-2, 1975

47. "हिन्दी तथा बंगला में प्रश्नवाचक वाक्य", श्री० तोमिओ मिज़ोकामि, अजिया अफ्रिका बुन्पो केन्क्यु, अंक 6, 1977

48. "हिन्दी में निपात : एक अध्ययन", श्री० कात्सुरो कोगा, अजिया अफ्रिका बुन्पो केन्क्यु, अंक 6, 1977

49. "हिन्दी में लिंग संबंधी समस्याएँ", श्री० कात्सुरो कोगा, अजिया अफ्रिका बुन्पो केन्क्यु, अंक 7, 1978

50. 'हिन्दी शब्द समूह—देवरानी जेठानी की कहानी में—", श्री० कात्सुरो कोगा, इन्दोगाकु-बुक्क्योगाकु केन्क्यु, अंक 23, 1974

51. "हिन्दी साहित्य के इतिहास में घासलेटी आन्दोलन", श्री० तोशिओ तानाका, इन्दोगाकु-बुक्योगाकु केन्क्यु, अंक 21-2, 1973

52. "हिन्दी स्वराघात की रूपरेखा", श्री० तेइजि साकाता, अजिअ अफ्रिकागो गाकुइन कियो, अंक 3, 1972

53. "हिन्दुस्तानी कहावतें और कहावतों को कहानियाँ", श्री० कात्सुरो कोगा, सेकाइ कोश्यो बुन्गे केन्क्यु, 1979

54. "हिन्दुओं का विवाह संस्कार और उससे संबंधित लोक परम्परा", श्री० तेइजि साकाता, ताकुशोकु दाइगाकु रोन्श्यु, अंक 104, 105, 1976

55. "हिन्दी ध्वनिमी" (अंग्रेजी में) डा० नोरिहिको उचिदा, 1977 Simant Publication, India.

56. "हिन्दी ध्वनिमी का अध्ययन" (जर्मनी भाषा में) डा० नोरिहिको उचिदा, 1978 Wlesbaden

Scanned with CamScanner

परिशिष्ट 2

इस अंक के लेखक

1. डॉ० नोरिहिको उचिदा प्राध्यापक, जापानी विभाग, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, के-87 हौज खास एंकुलेव, नई दिल्ली-110016 भारत
2. श्री० तोमिओ मिज़ोकामि, प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, ओसाका विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, 2-6 गोतेनयामा 2-च्योमे, ताकाराजुका-शि, ह्योगो-केन्, जापान
3. श्री० यूसुके ओहिरा, संवाददाता, साप्ताहिक "तोने" 829 हिगाशि कुराउचि-च्यो, नुमातांशि, गुनमा-केन्, जापान
4. श्री० शिगेओ अराकि, जापान अफ्रो-एशिया लेखक संघ सदस्य, 249-7 ह्याकुसोन्, इनागिशि, तोक्यो, जापान
5. सुश्री० ताकाको सुगानुमा, कुदो-सो, 17-12 सुगामो 3-च्योमे, तोशिमा-कु, तोक्यो, जापान
6. सुश्री० र्‌योको कोजिमा, इकेबाना प्राध्यापिका ओबारा सम्प्रदाय, 8-4 Sekino-च्यो, 2-च्योमे, कोगानेइ-शि, तोक्यो, जापान
7. श्री० योशिअकि सुजुकि "ज्वालामुखी" सम्पादक, सेइज़िन-सो, 5-9 मात्सुयामा, 3-च्योमे, कियोसे-शि, तोक्यो, जापान

परिशिष्ट 3

विशेष सहयोगी :

1. श्री वेदप्रकाश, 1654, लक्ष्मीबाई नगर, नई दिल्ली
2. श्री हरीशंकर शर्मा, हौज खास, नई दिल्ली
3. श्री ललित मोहन बहुगुणा, सी-2 डी/68-बी जनकपुरी, नई दिल्ली
4. श्री कैलाश चन्द्र पाण्डे, वाई-81, हौज खास, नई दिल्ली

Scanned with CamScanner

जापानी लोगों द्वारा लिखित हिन्दी पत्रिका

ज्वालामुखी

सितंबर 1982

तृतीय अंक

सम्पादक : योशिआकि सुजुकि

Scanned with CamScanner

जापानी लोगों द्वारा लिखित हिन्दी पत्रिका

ज्वालामुखी

अंक 3 : सितम्बर 1982

सम्पादक
योशिआकि सुज़ुकि

तोक्यो, जापान

Scanned with CamScanner

प्रकाशक :

योशिआकि सुजुकि
5-9 मात्सुयामा 3 च्योमे, कियोसे-शि,
तोक्यो, जापान
YOSHIAKI SUZUKI
5-9 Matsuyama 3 Chome, Kiyose-shi,
TOKYO, JAPAN

सहयोग राशि :

जापान में : 1,000 येन (डाक व्यय सहित)
विदेशों में : 5 डालर (डाक व्यय सहित)

मुद्रक :

विनोद पुस्तक मन्दिर
डॉ० रांगेय राघव मार्ग,
आगरा (भारत)

Scanned with CamScanner

अनुक्रम

			पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	योसिआकि सुजुकि	1
2.	जापान में हिन्दी शिक्षण की समस्याएँ	तोमिओ मिज़ोकामि	3
3.	शान्ति निकेतन और जापानी परम्परा	महेन्द्र साइजी माकिनो	11
4.	फिल्मोत्सव 82	तामाकि मात्सुओका	15
5.	कहानी—चौराहे के बीच	तोमियो मिज़ोकामि	21
8	ममता कालिया की कहानियों में मध्यवर्गीय नारी का चित्रण	एदेरा कोदामा	25
7.	"प्रेम कहानी"	माकोतो फुजिवारा	28
8.	आपका पत्र		30
9.	भारत में दस महीने	चिहिरो तानाका	34
10.	"काली वर्षा"	आकिओ ताकामुरा	36
11.	आधुनिक जापानी साहित्य की प्रवृत्तियाँ (2)	शिगेओ आराकि	40
12.	ब्लड ग्रुप और स्वभाव का सम्बन्ध	तेरुमित्सु माएकावा	43
13.	समीक्षा	योसिआकि सुजुकि	47
14.	परिशिष्ट		50

Scanned with CamScanner

सम्पादकीय

"ज्वालामुखी" का तीसरा अंक आप के हाथ में है। जापानी लोगों द्वारा लिखित हिन्दी के बारे में इस बीच हमें काफी कुछ सुझाव मिलते रहे हैं हम स्वयं भी महसूस करते हैं कि हिन्दी में निबन्ध लिखना हम लोगों के लिए कोई आसान काम नहीं है। साधारण जापानी लोगों के लिए विदेशी भाषा लिख पाना या बोल पाना आसान काम नहीं है। पर इसका मतलब यह भी नहीं है कि जापानी विदेशी भाषा नहीं सीखते। हम जरूर विदेशी भाषा सीखते हैं पर न जाने क्यों हमें बोलना और लिखना भली प्रकार नहीं आ पाता। इसका सबसे बड़ा दोष शायद जापानी शिक्षा पर ठहरता है। जापान में विदेशी भाषा शिक्षण में व्याकरण और अनुवाद पर ही अधिकतर बल दिया जाता है और दूसरे व्यवहार में जापान में केवल जापानी भाषा ही बोली जाने के कारण विदेशी भाषा बोलने की आवश्यकता ही महसूस नहीं होती। इस प्रकार के वातावरण में हम कैसे जीवित विदेशी भाषा सीख सकते हैं? हमारे देश में हिन्दी का शिक्षण भी इसका अपवाद नहीं है। जापान में हमारे हिन्दी प्रेमी हिन्दी सीख रहे हैं, व्याकरण सीखने के बाद लोककथाओं या कहानियों का अनुवाद करते हैं अर्थात् किताबी हिन्दी सीख रहे हैं। इसलिए मूल हिन्दी लिखने में बड़ी कठिनाई होती है। बाएँ हाथ में शब्द कोश, दाएँ हाथ में कलम पकड़ कर मुश्किल से शब्द कोश में से शब्द चुनकर निबन्ध लिखते हैं, चाहे इस शब्द का सही प्रयोग भी न आता हो। मेहनत का काम है। पर हमारे कुछ निबन्धकार उच्चकोटि की हिन्दी लिखते हैं। यह बहुत प्रशंसनीय है फिर भी यह पत्रिका केवल उन्हीं लोगों के लिए ही नहीं, वरन् सभी हिन्दी प्रेमियों के लिए है। क्योंकि मुझे दृढ़ विश्वास है कि केवल उच्च कोटि की हिन्दी ही अच्छा निबन्ध नहीं, बल्कि सरल हिन्दी में भी अच्छा निबन्ध लिखा जा सकता है। हिन्दी निबन्ध का अर्थ गहन हिन्दी लिख लेना भर ही नहीं, बल्कि महत्वपूर्ण यह है कि हिन्दी में निबन्धकार क्या लिखना चाहता है। इसी कारण से मैं सदा सभी प्रकार के हिन्दी निबन्धों का स्वागत करता हूँ। जो इस पत्रिका में उच्च कोटि की हिन्दी में लिखे गए निबन्धों से लेकर बिल्कुल सरल हिन्दी में लिखे गए निबन्धों का समावेश आपको देखने को मिलेगा।

जैसा कि मैं लिख चुका हूँ कि जापानी लोगों के लिए विदेशी भाषा सीखना आसान काम नहीं। अंग्रेजी भी इसका अपवाद नहीं। अगर पाठकगण जापान पधारेंगे तो आपको जापान में बहुत से अंग्रेजी शब्द सुनने और देखने को मिलेंगे और आप शायद सोचेंगे कि जापानी लोग अंग्रेजी बोल सकते हैं। मगर आप अंग्रेजी में बोलेंगे तो अधिकांश जापानी आपकी भाषा नहीं समझ पाएँगे। तब शायद आपको खीझ हो कि इन जापानी लोगों को

Scanned with CamScanner

अंग्रेजी नहीं आती, इतने विकसित देश में अंग्रेजी जैसी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा तक नहीं चलती। हाँ, अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा अवश्य है पर अपने देश में अन्तर्राष्ट्रीय भाषा की क्या आवश्यकता है? भारत में भाषा समस्या को लेकर हमें कभी-कभी यहाँ तक सुनने को मिलता है कि अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है इसलिए हिन्दी से बेहतर है। पर क्यों अपनी भाषा की उपेक्षा करके अन्तर्राष्ट्रीय भाषा की प्रशंसा की जाती है? जो आदमी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्य करते हैं उनके लिए अन्तर्राष्ट्रीय भाषा की आवश्यकता जरूर है पर साधारण जनता के लिए अन्तर्राष्ट्रीय भाषा की क्या आवश्यकता है? अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा तो है इस अन्तर्राष्ट्रीय भाषा का प्रयोग भारतीय स्वयं भारत में ही कर रहे हैं। इस प्रकार के भाषाई वातावरण में जब तक अंग्रेजी को महत्त्व दिया जाता रहेगा तब तक शायद भारत की अन्य भाषाओं की उपेक्षा ही होती रहेगी।

14 सितम्बर, 1982
हिन्दी दिवस का दिन
नई दिल्ली में

सम्पादक
योशिआकि सुजुकि

Scanned with CamScanner

जापान में हिन्दी शिक्षण की समस्याएँ

तोमिओ मिज़ोकामि

(1) अध्ययन-अध्यापन का संक्षिप्त इतिहास[1]

जापान में हिन्दी अध्ययन-अध्यापन के दो केन्द्र हैं—तोक्यो विदेशी भाषा विश्वविद्यालय तथा ओसाका विदेशी भाषा विश्वविद्यालय—दोनों सरकारी विश्वविद्यालय हैं। तोक्यो विदेशी भाषा विश्वविद्यालय का निर्माण लगभग अस्सी वर्ष पहले तथा ओसाका विदेशी भाषा विश्वविद्यालय का निर्माण लगभग साठ वर्ष पहले हुआ। परन्तु द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति से पूर्व ये दोनों विश्वविद्यालय इण्टरमीडिएट कालिज स्तर के त्रिवर्षीय कोर्स के 'विद्यालय' मात्र थे, जिनमें विश्व की विभिन्न विदेशी भाषाओं का (अध्ययन कम) अध्यापन (अधिक) होता था। भारतीय भाषा विभाग दोनों विद्यालयों में लगभग प्रारम्भ से ही मौजूद था, परन्तु वहाँ हिन्दी का अध्यापन नहीं होता था बल्कि 'हिन्दुस्तानी' के नाम से आसान उर्दू ही पढ़ाई जाती थी। जो भारतीय अध्यापक पढ़ाने के लिए बुलाये जाते थे अधिकतर हिन्दू थे। इसलिए उर्दू से कोई धार्मिक भाव सम्बद्ध नहीं था। यह 'भाषा शिक्षण' की दृष्टि से भले ही सही भी था, पर भाषा के साथ उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को काटा गया। परिणामतः छात्र भारतीय संस्कृति के साथ गहराई से परिचित नहीं हो सके। जिज्ञासु छात्र इस बात से संतुष्ट नहीं थे। तोक्यो और ओसाका में इस हिन्दुस्तानी के प्रवर्त्तक थे—क्रमशः प्रो० रेइचि गामो तथा प्रो० एइज़ो सावा। दोनों उर्दू के साथ फारसी भाषा में भी निपुण थे।

उल्लेखनीय है कि उक्त हिन्दुस्तानी विभाग में सहायक या ऐच्छिक भाषा के रूप में समय-समय पर तोक्यो में तमिल का तथा ओसाका में अरबी या फारसी का अध्यापन भी होता था।

द्वितीय महायुद्ध के बाद इन दोनों विद्यालयों को विश्वविद्यालय का स्तर प्रदान कर दिया गया और चार कक्षाओं की व्यवस्था के साथ बी० ए० की उपाधि भी प्रदान की जाने लगी, परन्तु विभाग तथा अध्यापक वही रहे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जब भारत ने हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्वीकृत किया तब से इन दोनों विश्वविद्यालयों में धीरे-धीरे हिन्दी का महत्त्व बढ़ने लगा परन्तु हिन्दी के अध्यापक की नियुक्ति में अभी

1—प्रस्तुत लेख निर्माण में यत्र-तत्र प्रो० दोई द्वारा लिखित 'हिन्दुस्तानी, उर्दू, हिन्दी' नामक लेख ('त्सूशिन्' अंक 36, जुलाई 1979, एशिया तथा अफ्रीका भाषा संस्कृति संस्थान, तोक्यो विदेशी भाषा विश्वविद्यालय) से कुछ सहायता प्राप्त हुई है, जिसके लिए लेखक उनका आभारी है।

Scanned with CamScanner

कुछ समय की आवश्यकता थी। ऐसी हालत में उर्दू पढ़े हुए छात्रों से ही हिन्दी के विशेषज्ञ बनने की आशा की जा सकती थी। प्रो० क्यूया दोई ही हिन्दी के ऐसे पहले विशेषज्ञ बने। उन्होंने हिन्दी का अध्ययन पहले-पहल वर्मा में स्वयं शिक्षक के रूप में प्रारम्भ किया था जब वे द्वितीय महायुद्ध के समय सेना में भरती होकर वहाँ गए थे। सन् 1949 के बाद प्रो० दोई अपने तोक्यो विदेशी भाषा विश्वविद्यालय में उर्दू पढ़ाते हुए हिन्दी का अध्ययन श्रीमती रत्नम् के नेतृत्व में करते रहे जिनके पति तोक्यो स्थित भारतीय दूतावास के प्रथम सचिव थे। सन् 1953 में उनको दो साल के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हिन्दी का अध्ययन करने का अवसर मिला। सन 1955 में हिन्दी विषय में पारंगत होकर जापान वापस आने पर वे हिन्दुस्तानी (उर्दू) विभाग से अलग हिन्दी विभाग को स्थापित करने में जुट गए और उनका यह प्रयत्न सन् 1959 में सफल हो गया। विभाग का नाम भी 'हिन्दुस्तानी विभाग' से 'भारत-पाकिस्तान विभाग' में परिवर्तित किया गया। वैसे हिन्दी तथा उर्दू सम्पूर्ण रूप से अलग-अलग विभाग न होकर इसी 'भारत-पाकिस्तान विभाग' के दो अलग कोर्स (उपविभाग भी कह सकते हैं) बने। तब से हिन्दी और उर्दू के लिए पन्द्रह-पन्द्रह सीटों की परम्परा चली आ रही है।[1]

प्रो० दोई के हिन्दी के प्रथम छात्र के रूप में प्रो० तोशिओ तानाका का नाम उल्लेखनीय है जो प्रो० दोई के अवकाश ग्रहण करने के बाद वर्तमान काल में उक्त हिन्दी उप-विभाग के अध्यक्ष के रूप में कार्यरत हैं। उन्होंने सन् 1965 से सन् 1967 तक दिल्ली विश्वविद्यालय में हिन्दी का अध्ययन किया। आधुनिक हिन्दी साहित्य उनका विषय है। प्रो० काजुहिको माचिदा इस समय जापान में हिन्दी के कनिष्ठ अध्यापक हैं। उन्होंने सन् 1979 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सीधे हिन्दी में एम० ए० किया। तब तक उक्त विश्वविद्यालय में भी एम० ए० का कोर्स शुरू हुआ था, अतः प्रो० माचिदा ने अपने तोक्यो विदेशी भाषा विश्वविद्यालय से भी एम० ए० किया। भाषा विज्ञान और काव्य शास्त्र उनके विषय हैं। इस विश्वविद्यालय से सम्बद्ध 'एशिया तथा अफ्रीका भाषा संस्कृति संस्थान' में भारतीय आर्य भाषाओं का ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक अध्ययन करने वाले डाक्टर त्युयोशि नारा का नाम भी उल्लेखनीय है। वे बंगला के साथ हिन्दी पर भी शोध कार्य करते हैं।

ओसाका में उक्त प्रो० एइजो सावा स्वयं उर्दू के साथ हिन्दी भी पढ़ाते थे; उर्दू की कक्षा में 'मैदान-ए-अमल' तथा हिन्दी की कक्षा में 'कर्मभूमि' पढ़ाते थे। उन्होंने सन् 1948 में 'हिन्दी प्रवेशिका' नामक पुस्तक लिखी थी। यह जापान में देवनागरी में लिखी गई प्रथम हिन्दी की पुस्तक के रूप में प्रसिद्ध है। इस किताब के अलावा भी उन्होंने कई किताबें लिखी थीं। उनमें से सबसे मोटी और विख्यात किताब थी—'इन्दोबुन्तेन', जिसमें सम्पूर्ण हिन्दी व्याकरण का परिचय विस्तार से दिया गया है। हिन्दी के प्रति विशेष प्रेम होने पर भी प्रो० सावा का अधिकार उर्दू पर अधिक था। अतः इस विश्वविद्यालय में भी हिन्दी-उर्दू उप-विभाग विभाजन के बाद ही हिन्दी के विशेषज्ञ बनने लगे। ऐसे ही विशेषज्ञ प्रो० कात्सुरो कोगा, जो आजकल इसी 'भारत-पाकिस्तान विभाग' के अध्यक्ष हैं, प्रो० दोई के अवकाश ग्रहण करने के बाद इन दो विदेशी भाषा विश्वविद्यालयों (तोक्यो तथा ओसाका) में हिन्दी के वरिष्ठतम अध्यापक हैं। उन्होंने सन् 1961 से सन् 1963 तक पिलानी तथा आगरा में, फिर सन् 1975 से 1976 तक केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, नई दिल्ली में हिन्दी का अध्ययन किया। हिन्दी गद्य का इतिहास, लोक साहित्य, भाषा विज्ञान में उनका गहरा ज्ञान है। इस समय वे नवीन हिन्दी-जापानी शब्द-कोश के निर्माण में लगे हुए हैं। विख्यात भारतीय भाषाविद् डाक्टर नोरिहिको उचिदा, जो कभी दिल्ली विश्वविद्यालय तथा जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में जापानी भाषा के अध्यापक रह चुके हैं, सन्

1—प्रस्तुत लेख से सीधा सम्बन्ध न होने के कारण उर्दू के अध्यापकों के नामों का उल्लेख नहीं किया गया। यह बात ओसाका विदेशी भाषा विश्वविद्यालय के सन्दर्भ में भी उचित है।

Scanned with CamScanner

1960 से सन् 1963 तक इसी ओसाका विदेशी भाषा विश्वविद्यालय में हिन्दी तथा बंगला के अध्यापक रहे। दिल्ली से प्रकाशित 'हिन्दी फ़ॉनोलोजी' उनकी अन्यतम प्रसिद्ध पुस्तक है। प्रस्तुत प्रपत्र लेखक (तोमिओ मिज़ो-कामि) इन दो अध्यापकों का छात्र रहा, जिसने भारत में इलाहाबाद, शान्तिनिकेतन तथा दिल्ली में शिक्षा प्राप्त की। इसलिए लेखक का सम्बन्ध केवल हिन्दी से न होकर बंगला तथा पंजाबी के साथ भी है और वह भाषा विज्ञान में विशेष रुचि रखता है।

विश्वविद्यालय का स्तर प्राप्त होने के उपरान्त इन दो संस्थाओं में अध्यापन के साथ-साथ अध्ययन तथा शोध-कार्य पर भी विशेष जोर दिया जाता है और भाषा-शिक्षण के साथ साहित्य तथा भारतीय संस्कृति का भी परिचय कराया जाता है। भारतीय इतिहास, भारतीय दर्शन, भारत की आर्थिक व्यवस्था आदि विषयों पर अपने यहाँ विशेषज्ञ न होने के कारण दूसरे विश्वविद्यालयों से विशेषज्ञों को बुलाकर छात्रों को इन विषयों से अवगत कराया जाता है। परन्तु ओसाका विदेशी भाषा विश्वविद्यालय के प्रो० शो कुवाज़िमा इन दो विश्व-विद्यालयों में ऐसे प्रथम अध्यापक हैं जिनका सम्बन्ध सीधे हिन्दी से न होकर भारतीय संस्कृति से है। वे आधुनिक भारतीय इतिहास के विशेषज्ञ के रूप में सन् 1966 में इसी विभाग में नियुक्त हुए। उन्होंने एक लम्बी अवधि तक दिल्ली, चण्डीगढ़ तथा बंगलौर में शोध-कार्य किया। ओसाका में तोक्यो से अध्यापकों की संख्या ज्यादा होने के कारण छात्रों की संख्या भी कुछ ज्यादा है। यहाँ हिन्दी के लिए अट्ठारह सीटें हैं।

प्रो० दोई ने जापान में हिन्दी अध्ययन-अध्यापन का श्रीगणेश किया। उन्होंने हिन्दी-जापानी शब्द-कोश का निर्माण कर जापान के हिन्दी-जगत् को बड़ा योगदान दिया, परन्तु उनकी देन यहीं तक सीमित नहीं थी बल्कि उन्होंने अपने छात्रों में से ऐसे विद्वान् तैयार किये, जो आजकल जापान के विभिन्न विश्वविद्यालयों में विभिन्न भारतीय विषयों का अध्ययन-अध्यापन करते हैं। उनमें से प्रो० तेइजि साकाता का नाम उल्लेखनीय है, जो आजकल तोक्यो स्थित एक प्राइवेट यूनिवर्सिटी—ताकुशोकु विश्वविद्यालय के अध्यापक हैं। भाषा-विज्ञान, लोक साहित्य का संकलन तथा हिन्दी साहित्य का इतिहास आदि विषयों पर उनके शोध प्रबन्ध प्रकाशित होते रहते हैं।

तोक्यो तथा ओसाका विदेशी भाषा विश्वविद्यालयों में हिन्दी अध्ययन-अध्यापन के स्तर को ऊँचा बनाने में भारतीय अध्यापकों का योगदान भी कम नहीं रहा है, जिनमें कुछ विशेष भारतीय अध्यापक डाक्टर लक्ष्मीधर मालवीय, श्री श्यामसुन्दर जोशी, श्रीमती इन्दु जैन तथा कु० बुद्धी राजा इत्यादि हैं।

इन दो विदेशी भाषा विश्वविद्यालयों के अलावा भी गत 10-15 वर्षों में ऐसे विश्वविद्यालयों की संख्या बढ़ी है जहाँ हिन्दी की पढ़ाई की सुविधा है। उक्त ताकुशोकु विश्वविद्यालय के बाद तोकाई विश्व-विद्यालय ऐसी प्राइवेट यूनिवर्सिटी है जिसमें हिन्दी के कुछ विद्यार्थी हैं। प्रो० दोई आजकल इसी विश्वविद्यालय में पढ़ाते हैं। संस्कृत तथा भारतीय दर्शन (जिसमें बौद्ध दर्शन के अध्ययन का विशेष रूप से प्रबन्ध है) के उच्चकोटि के अध्ययन केन्द्र के रूप में तोक्यो विश्वविद्यालय तथा क्योतो विश्वविद्यालय की ख्याति है। इन दो विश्वविद्यालयों में हिन्दी को बहुत पहले से एक वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाया जाता रहा है, यहाँ प्रति वर्ष दो-तीन विद्यार्थी हिन्दी पढ़ने आते हैं। कुछ साल पहले से निम्नलिखित प्राइवेट यूनिवर्सिटियों में भी हिन्दी की पढ़ाई ऐच्छिक विषय के रूप में चल रही है—ताइशो विश्वविद्यालय, ओतानि विश्वविद्यालय, ओत्तेमोन गाकुइन विश्वविद्यालय तथा कान्साई विदेशी भाषा विश्वविद्यालय। कान्साई विदेशी भाषा विश्वविद्यालय में हिन्दी पुस्तकों का अच्छा संग्रह है। इस विश्वविद्यालय में हिन्दी पठन-पाठन का कार्य-भार संभालने वाले

Scanned with CamScanner

डाक्टर रमेश माथुर हैं। इस प्रकार जापान में इस समय कुल मिलाकर दस विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ने-पढ़ाने की सुविधा उपलब्ध है और अनुमान किया जा सकता है कि हिन्दी पढ़ने वाले छात्रों की संख्या 150 से ज्यादा होगी।

विश्वविद्यालय के अलावा भी प्राइवेट संस्थान में या निजी तौर पर हिन्दी की सेवा करने वाले व्यक्ति भी हैं, जिनमें 'ज्वालामुखी' के सम्पादक श्री योशिआकि सुजुकि भी हैं। 'सर्वोदय' के अनुयायी श्री कोकि नागा एशिया अफ्रीका भाषा विद्यालय (तोक्यो स्थित एक प्राइवेट संस्थान) में हिन्दी पढ़ाते हैं। उनके सहयोगी डाक्टर नरेश मन्त्री हैं। श्री हिदेआकि इशिदा एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में अंग्रेजी का अध्यापन करते हुए हिन्दी तथा मराठी के शोध कार्य में रत हैं। इस प्रकार से हिन्दी पढ़ने वाले विद्यार्थियों को तथा हिन्दी पर शोध-कार्य करने वाले विद्वानों की संख्या तेज़ी से बढ़ रही है और बढ़ती जाएगी।

(2) कठिनाइयों के उदाहरण

जापान में हिन्दी सीखने वाले छात्रों को भाषा की दृष्टि से कतिपय कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। परीक्षा-भवन में विद्यार्थी जिस प्रकार की भूलें करते हैं उनके उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए लेखक ने ओसाका विदेशी भाषा विश्वविद्यालय के पहली कक्षा से चौथी कक्षा तक के हिन्दी के विद्यार्थियों की अभिव्यक्ति-क्षमता की परीक्षा ली। उनको संवादहीन हास्यचित्र (कार्टून) दिखाया गया, जिसके छः भाग हैं :

पहले भाग में दोनों बच्चों में मारपीट हो रही है।

दूसरे भाग में एक बच्चा रोता हुआ अपने पिता के पास आता है।

तीसरे भाग में रोते हुए बच्चे का पिता अपने बेटे को लेकर जा रहा है तो उधर से दूसरा बच्चा भी अपने पिता को लेकर आ रहा है।

चौथे भाग में एक दूसरे के बच्चे को दोषी ठहराते हुए दोनों पिताओं में प्रतिवाद शुरू होता है।

पाँचवें भाग में दोनों पिताओं में मारपीट हो जाती है।

छठे भाग में दोनों पिताओं का झगड़ा उग्रतम रूप धारण करता है, पर दोनों बच्चे फिर खेलने लग जाते हैं।

छात्रों को इस चित्र की व्याख्या हिन्दी में अपने शब्दों में लिखने का आदेश दिया गया। शब्दों की संख्या तथा अभिव्यक्ति पर कोई पाबन्दी नहीं लगाई गई परन्तु शब्द-कोश तथा पुस्तक की सहायता का निषेध किया गया और आधे घण्टे का समय दिया गया। नीचे दिये गये उदाहरणों में कोष्ठक की संख्या उस छात्र की कक्षा को सूचित करती है।

(1) लिंग की अशुद्धियाँ :

दूसरे की कपड़ा (1), बड़े आंखें (1), उनका लड़ाई (1), अपना बात (1), लड़ाई के जगह (1), मेरा जीत (1), बच्चों के बात (1), बच्चों ने ध्यान नहीं दी (1), पिता लड़ाई लड़ रही थी (1), पिता जी के लड़ाई (2), दोस्ती हुआ (2), देर हो गया (2), बुरा-सूरत चीज़ (2), शिकायत करना चाहिए (2) मेरा पाप

Scanned with CamScanner

नहीं थी (3), हरने का वजह (3), मेरी दिल (3), उनका हालत (3), अपनी मित्र (3), शत्रु की मुँह (3), दूसरे बच्चों का निन्दा (3), उसकी मुँह से (4), मार-पीट शुरू हुआ (4), लड़ाई के बात (4) कैसा शिक्षा (4)।

(2) वचन की अशुद्धियां :

दूसरे बच्चे भी अपने पिता जी के साथ आया था (1), दो बड़े के बीच में (1), दोनों बच्चा (1), दो बच्चा खड़ा था (1), घंटे बीत रहा है (1), दो लड़के के साथ खड़ा होते हुए (2), सभी बात (2), दोनों लड़के पहुँचा (2), दो बच्चे खड़ा होकर (3), दूसरे लड़का (3), इस बच्चे के घर कहाँ है ? (3), अपने बच्चा (3)।

(3) वर्तनी की अशुद्धियाँ :

परुषों (1), ड़लाई (1), सचमच (1), शत्रुों (1), घानीष्ठ मित्र (1), मालम (1) चाहुता हू (1), भुल गया (1), शमील (1), तुमहारा (1), नराज (1), दुसरे (1), बच्छा ('बच्चा' के लिए) (2), दुन्या (2), छुपछाप (2), जब (2), लेकल ('लेकर' के लिए) (2), क्षामा (3), अंसुन (3), बुला ('बुरा' के लिए) (3), जगला ('झगड़ा' के लिए) (3), जगड़ा (वही) (3), तकावत ('ताकतवर' के लिए) (3), जोड़ ('जोर' के लिए) (3), कंडकों ('कंकड़ों' के लिए) (4), सन्कर ('सुनकर' के लिए) (4)।

(4) परसर्ग की अशुद्धियां :

आपस में पकड़ने लगे (1), बड़े आँखों में से देख लिये (1), लड़के साथ के साथ (1), पिता जी को आपस में नाराज थे (1), पिताजी को नाराज हो गये थे (1), दूसरे पर मार दिया (1), उसका पिता जी (1), बोलने कि कोशिश की (1), देखना को बन्द किया (1), बड़ों आने की कहानी थी (1), अपने बच्चों का रोते हुए देखकर (2), पिता जी बिगड़ते को देखने में थक गए (4), आंसुओं पोंछते-पोंछते (4)।

(5) जापानी शैली की हिन्दी :

व्याकरण की दृष्टि से चाहे अशुद्ध न हो, पर जापानियों द्वारा लिखे गए हिन्दी वाक्यों पर यत्र-तत्र जापानी का प्रभाव पाया जाना स्वाभाविक है। इसका कारण है—जापानी भाषा में सोचकर सीधे हिन्दी में रूपान्तरित करना। यद्यपि कभी-कभी इसका प्रमाण देना कठिन है, क्योंकि इस तरह की शैली छात्रों के अभ्यास के अभाव के कारण भी हो सकती है। इस प्रकार की 'जापानी शैली की हिन्दी' के उदाहरण नीचे दिये जाएँगे :

कारण सुने ('पूछे' के लिए) (1), कह झगड़ने लगे (1), कम बातें के लिए (1), हत्या किया गया बच्चा (1), चुकने के समय तक खेलेंगे (1), इधर से आने वाले वह बच्चा और उसके पिता जी थे (1), शक्ति से ('जोर से' के लिए), उनकी लड़ाई कठिन बन रही है (1), उनका झगड़ा बहुत कठिन होता है (1), रुचि की आँखों से देख रहे हैं (1), नया शत्रु हो जा रहे थे (2), जी तोड़कर लड़ रहे थे (2), छोटे दो लड़के (2), झगड़े में जय किया है (3), हाथ-पैर हिलाकर लड़ रहे हैं (3), मेरा पाप नहीं थी (3), वे तो हमेशा मित्रता में हैं (3), पिता जी बिगड़ना रुक कर के अपने अपने घर लौट जायें (3), पिता जी मुँह लाल करके (3)।

समय की असुविधा इत्यादि कारणों से सभी छात्र यह परीक्षा नहीं दे पाये। जिन छात्रों ने यह परीक्षा दी, उनकी संख्या इस प्रकार है :

Scanned with CamScanner

पहली कक्षा	16
दूसरी कक्षा	15
तीसरी कक्षा	9
चौथी कक्षा	5
कुल	45

यह संख्या हिन्दी के छात्रों की कुल संख्या की लगभग 65 प्रतिशत है ।

जब सभी छात्रों को यही उत्तर-पुस्तिका फिर घर से लिखकर लाने का आदेश दिया गया तो लगभग सभी छात्रों ने बड़ी उन्नति दिखाई क्योंकि घर में समय की कोई पाबन्दी नहीं थी और वे शब्द-कोश भी देख सकते थे । ऐसे ही छात्रों में से चौथी कक्षा के एक छात्र द्वारा लिखी गई व्याख्या नीचे ज्यों-की-त्यों प्रस्तुत की जायेगी । यह सबसे अच्छा लेख था :

(1) दो बच्चे मारपीट कर रहे थे । वे मन्नू और अन्नू थे । दोनों छः साल के लड़के और पाठशाला में सहपाठी थे । जैसे बच्चों की दुनिया में बहुत से दोस्त अपनी घनिष्ठता के कारण ही अक्सर झगड़ा करते हैं वैसे ही मन्नू और अन्नू थे ।

(2) अन्नू कमजोर था और हारकर रोते रोते अपने घर लौटा । उसने आँसुओं पोंछते हुए हिचकियाँ लेकर अपने बाप से कहा, "पापा, मन्नू तो बहुत शैतान है । मैंने उससे कुछ नहीं किया, न कहा । फिर उसने अकारण मुझे बुरी तरह पीटा और लातें मार दीं । उसे बदला न दे सकूँ तो मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता । मन्नू को खूब डाँट दो, उसे सख्त सज़ा मिलना चाहिये ।"

(3) बाप ने कहा, "अच्छा बेटा, मैं अभी तक नहीं जानता था कि मन्नू इतना नटखट है । उसका पापा और मैं पुराने दोस्त हैं । मैं उसे अपने उपद्रव के बारे में चेतावनी दूँगा । मन्नू बचपन से ही इतना शैतान है कि आगे कैसा दुष्ट आदमी हो जाए । चिन्ता करने की बात नहीं । मैं अभी जाऊँगा, तुम भी साथ आओ ।" वह अन्नू के हाथ खींचकर चलने लगा । तो क्या बात, मन्नू का पापा भी अपने बेटे के साथ इधर आ रहे थे ।

(4) रास्ते पर उन चारों की मुलाकात हुई । अन्नू के बाप और मन्नू के बाप आपस में गाली देने लगे । "तुम्हारा बच्चा बहुत शैतान है । तुम घर में उसे कैसा शिक्षा दे रहे हो ? बेटा अपने बाप को देखादेखी करता है । इसलिए उसका बाप ईमानदार है, तो बच्चा भी ईमानदार होता है, अगर बाप बदमाश है, ते बच्चा तुम्हारे बेटे का सा व्यवहार करता है ।" दोनों पक्ष उत्तेजित हो गए । मुँह से गन्दे शब्द निकले और आँखें लाल हो गईं । पर यह अन्नू और मन्नू की समझ में कुछ भी समझ में नहीं आयी कि क्यों इतने बड़े आदमी इतनी आसानी से नाराज़ हो जाते हैं । दो बच्चे मौन से आपस में ताकते ही रहे ।

(5) दो बड़े आदमी और भी उत्तेजित हो गए । एक ने दूसरे की गरदन पकड़ ली, तो दूसरे ने हाथ उठाया । मारपीट शुरू होने वाली थी । दो बच्चे दाँत तले उँगली दबाकर एक साथ खड़े हुए थे ।

Scanned with CamScanner

(6) अन्त में मारपीट होने लगी। अन्नू के पापा ने एक घूँसा मारा, उल्ट मन्नू के पापा ने ठोकरें जमा दी। मुक्केबाजी हो रही थी। लेकिन बच्चों का मन चंचल होता है और वे कुट्टी करने पर भी तुरन्त मेल-मिलाप करते हैं। अब अन्नू और मन्नू को अपने बाप की घूँसेबाजी कोई दिलचस्पी की बात नहीं थी। वे दोनों एक साथ उकड़ूँ बैठकर कंकड़ों से खेलने लगे।

उच्चारण के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि जापानियों के लिए /र/ /ल/ तथा /ड़/ का भेद करना बहुत कठिन है परन्तु अल्पप्राण तथा महाप्राण का भेद अभ्यास से सम्भव हो जाता है। इस विश्वविद्यालय में पहली कक्षा के छात्रों को प्रत्येक सप्ताह 90 मिनट का लैंग्वेज़ लैबोरेट्री (भाषा प्रयोगशाला) की कक्षा होती है, जिसमें यन्त्र के माध्यम से उच्चारण का अभ्यास कराया जाता है।

(3) समस्याएँ और दिशाएँ

जापान में हिन्दी पढ़ने के इच्छुक छात्रों के समक्ष उनके विविध उद्देश्य होते हैं। ओसाका विदेशी भाषा विश्वविद्यालय के छात्रों के सर्वेक्षण के आधार पर निम्नलिखित विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है :

भारतीय दर्शन सीखने की इच्छा, भारतीय इतिहास पढ़ने की इच्छा, योगदान का अभ्यास तथा कोई भारत-भ्रमण की इच्छा से इस विभाग में प्रवेश लेता है। हिन्दी में विशेष रुचि लेकर प्रवेश लेने वाले विद्यार्थी बहुत कम होते हैं। इससे संकेत मिलता है कि विद्यार्थियों की रुचि भाषा की अपेक्षा संस्कृति की ओर अधिक है। वस्तुतः भाषा और संस्कृति तो मानवीय सृष्टि के दो अभिन्न पक्ष हैं। विशेषकर ओसाका विदेशी भाषा विश्वविद्यालय की स्थापना का उद्देश्य स्पष्ट रूप से विदेशी भाषा के माध्यम से विदेशी संस्कृति को सीखना है। अतः विदेशी भाषा शिक्षा का महत्त्व किसी रूप में कम नहीं है।

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे छात्र भी होते हैं जो बिना किसी उद्देश्य के यों ही आते हैं—शायद इसलिए कि दूसरे विभागों की तुलना में 'भारत-पाकिस्तान विभाग' में प्रवेश लेना आसान है। विश्वविद्यालय में प्रवेश लेने के इच्छुक जापान के हाई स्कूल के छात्रों को मुख्यतः उनके रेकार्ड के आधार पर दिशा-निर्दिष्ट किया जाता है, रुचि के आधार पर नहीं। ऐसे भ्रमित छात्रों का विश्वविद्यालय में प्रवेश लेना ही मुख्य उद्देश्य है। प्रवेश लेने के बाद पढ़ना नहीं, या पढ़ना भी हो तो हिन्दीतर विषय। ऐसे छात्र अध्यापकों के लिए बोझ बन जाते हैं क्योंकि हिन्दी की ओर उनकी रुचि नहीं होती।

साधारणतः जापानी विद्यार्थी 18-19 की आयु में हिन्दी सीखना शुरू करते हैं तब तक वे विदेशी भाषा के रूप में केवल अंग्रेजी पढ़ते हैं। अतः नवीन भाषा के रूप में हिन्दी पर अधिकार प्राप्त करने के लिए उन्हें बहुत मेहनत (या कभी-कभी 'तपस्या' !) करनी पड़ती है। यद्यपि हिन्दी मूलतः वाक्य-रचना की दृष्टि से और उच्चारण की दृष्टि से भी जापानियों के लिए कठिन नहीं है, अधिक उपयुक्त होगा यह कहना कि अंग्रेजी की तुलना में यह बहुत आसान है। पर आम विद्यार्थी अपने हाईस्कूल के अध्ययन-काल में मेहनत करने की क्षमता खो बैठते हैं। जब चार वर्ष के बाद स्नातक होकर वे समाज में प्रवेश करेंगे तो वहाँ और भी परिश्रम करना पड़ेगा। इसलिए विश्वविद्यालय के चार साल उनके लिए 'विश्राम का समय' है। सप्ताह में पाँच पीरियड (नब्ब मिनट × 5) की कक्षा को बोधगम्य करने के लिए प्रत्येक छात्र से प्रतिदिन दो घण्टे घर में पढ़ने की आशा की जाती है, पर हिन्दी की पढ़ाई के लिए आम छात्रों के लिए प्रतिदिन दो घण्टे पढ़ना कठिन है यद्यपि असम्भव नहीं है।

Scanned with CamScanner

फिर भी यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि पूरे जापान के विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों के स्तर को देखते हुए अपने यहाँ के छात्रों का बौद्धिक स्तर काफी ऊँचा है। अध्यापकों की ओर से सही मार्गदर्शन हो तो दृढ़ संकल्प वाले छात्र बहुत कुछ सीख सकते हैं। हमेशा निराशावादी दृष्टिकोण को अपनाना भी ठीक नहीं होता, क्योंकि कुछ ऐसे मेधावी विद्यार्थी भी अपने यहाँ से निकलने लगे हैं जो भारत जाकर हिन्दी की पढ़ाई में भारतीय छात्रों के साथ बराबरी कर सकते हैं, यद्यपि ऐसे विद्यार्थियों की संख्या अभी 'समुद्र में बूँद' की तरह है।

विश्वविद्यालय में व्यवस्था का दोष भी है, जिसके लिए जापान सरकार का शिक्षा मन्त्रालय जिम्मेदार है : एक कक्षा में भाषा-शिक्षा के लिए 18 छात्रों को लेना अन्याय है (कभी-कभी 'फेल' छात्रों की वजह से यह संख्या 25 तक हो जाती है।)। हमारे पड़ौसी देश कोरिया के कान्कोकु विदेशी भाषा विश्वविद्यालय में तो हिन्दी के लिए 35 विद्यार्थी लेते हैं, पर अमेरिका के किसी भी विश्वविद्यालय में हिन्दी की कक्षा में इतनी संख्या में विद्यार्थी नहीं बैठते, यद्यपि अमेरिका में ऐसे विश्वविद्यालयों की संख्या जापान से तीन-चार गुनी अधिक जहाँ हिन्दी पढ़ाई जाती है। यदि एक कक्षा में केवल 4-5 छात्रों को ही लिया जा सके तो निस्सन्देह ही शिक्षण का फल कई गुना अधिक होगा। छात्रों में हिन्दी की ओर रुचि पैदा करने के लिए नये ढंग अपनाये जाते रहे हैं। इस दिशा में इस साल से दूसरी कक्षा के विद्यार्थियों को हिन्दी फिल्म के वीडीओ दिखाकर बड़ी सफलता मिल रही है। फिल्म दिखाने के पहले छात्रों को फिल्मी स्क्रिप्ट (संवाद पुस्तिका) दिया जाता है जिसे वे घर से पढ़कर आते हैं। कई बार एक ही दृश्य दिखाकर छात्रों से अभिनेता या अभिनेत्री के संवादों का अनुकरण कराया जाता है। मौखिक अभ्यास के लिए यह बहुत अच्छा साधन है। फिल्म से लाभ केवल भाषा शिक्षण का नहीं अपितु इस बात का भी है कि विद्यार्थी भारतीय जीवन को अपनी आँखों से देखकर भारतीय संस्कृति से जीवत रूप में परिचित हो सकते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना भी है कि किसी भी ज्ञान को अर्जित करने के लिए चलचित्र बड़ा प्रभावशाली साधन होता है।

यद्यपि प्रत्येक वस्तु को केवल व्यावहारिक तथा व्यावसायिक दृष्टि से देखना ठीक नहीं है (केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की प्रवेशिका की परीक्षा हमारे विद्यार्थी इसलिए देना नहीं चाहते कि उससे उन्हें कोई व्यावहारिक लाभ नहीं होता)। परन्तु यदि छात्र यह कहें कि हमें हिन्दी सीखने से क्या लाभ, क्योंकि जापान में सभी भारतीय लोग अंग्रेजी बोलते हैं, तो इस तर्क के आगे हमें क्षण भर के लिए चुप रहना पड़ता है। अतः लेखक की सहृदय भारतीय पाठकों से यही प्रार्थना है कि वे हिन्दी पढ़ने वाले जापानी छात्रों से अंग्रेजी में बात न करके हिन्दी अथवा भारतीय भाषाओं में बात करके उन्हें उत्साहित करें।

अन्त में 'ज्वालामुखी' के अतिरिक्त भारतीय पाठकों को दो ऐसी पत्रिकाओं का परिचय देना ही लेखक अपना कर्त्तव्य समझता है जो हिन्दी शिक्षा की ओर प्रेरित करती हैं। एक तोक्यो विदेशी भाषा विश्वविद्यालय से प्रकाशित 'इन्दोबुन्गाकु' (भारतीय साहित्य) है, जिसमें हिन्दी, उर्दू, बंगला, तमिल, मराठी आदि की कुछ साहित्यिक रचनाओं के जापानी अनुवाद उपलब्ध हैं। आजकल सुश्री तामाकि मात्सुओका हिन्दी फिल्मों की समीक्षाएँ लिखकर इस पत्रिका के महत्त्व को बढ़ा रही हैं। दूसरी पत्रिका ओसाका विदेशी भाषा विश्वविद्यालय से प्रकाशित 'इन्दो-मिन्ज़ोकु केन्क्यू' (भारतीय मानव जाति विषयक अध्ययन) है, जिसमें केवल साहित्य ही नहीं, भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित लेख भी मिलते हैं। ये दो पत्रिकाएँ जापानी भाषा में ही प्रकाशित हैं।

●

Scanned with CamScanner

शान्ति–निकेतन और जापानी परम्परा

महेन्द्र साइजो माकिनो

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ जापान के अनुरागी थे। इसकी वजह है कि उन्होंने तीन बार जापान की यात्रा की थी। जापान और भारत के सांस्कृतिक इतिहास में द्वितीय विश्व-युद्ध के आगे-पीछे सबसे अधिक प्रभाव डाल दिया था, गुरुदेव ने। कवि ने जापान में एक बार जापानियों को सम्बोधित करते हुए कुछ इस प्रकार की कथा कही थी : "यद्यपि भारत गरीब देश है, पर आप हमें तिरस्कार न करें। भारत में प्राचीन आध्यात्मिक बुद्धि और उदार प्रकाश है। आपको उस संपदा की खोज करनी होगी। उसके लिए आप खुशी से भारत में आ सकते हैं जिसमें आप अपना उचित स्थान पायेंगे। आपने अपनी कला, साहित्य और दर्शन में जो गुण पाये हैं, उनका हमें परिचय कराइये।"

हमारे जापान में गुरुदेव का जीवन-चरित्र बहुत सुन्दर ढंग से अनुवादित हुआ है और आज मूल बंगला से रवीन्द्र-रचनावली का जापानी अनुवाद फिर से 12 खंडों में प्रकाशित होने जा रहा है। कवि की कविता, नाटक, संगीत, साहित्य, दर्शन को मूल बंगला में रसास्वादन करने या मूलतत्त्व को स्पर्श करने के लिए आज के जापानी नवयुवक काफी संख्या में रुचि ले रहे हैं। अतः बंगला भाषा सीखने वालों की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है, जिनका स्थान हिन्दी के बाद आता है। विश्व-भारती में दुनिया के कोने-कोने से बहुत विद्यार्थी आते हैं, पर उसमें जापानी विद्यार्थियों की संख्या सबसे अधिक है।

1901 में जब गुरुदेव ने केवल पाँच छात्रों को लेकर छोटा-सा स्कूल चालू किया था, तब उसके दूसरे वर्ष (1902) में एक जापानी छात्र संस्कृत पढ़ने आया था, जिसे हम प्रथम विदेशी छात्र मान सकते हैं। उसका नाम था—भिक्षु शितोकु होरि (1876-1903)। वे कवि के आत्मीय विदेशी मित्रों में से एक जापानी बंधु श्री तेंसिन ओकाकुरा की सिफारिश से आये थे। परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि शान्तिनिकेतन से पाकिस्तान जाने के रास्ते में टेटनस (Tetanus) के प्रकोप से लाहौर के एक अस्पताल में उनका देहान्त हो गया। फिर 1904 में प्रो० जिनोसुके सानो (1882-1938) जूडो और जापानी भाषा सिखाने के लिए शान्तिनिकेतन आये, जो केइओ विश्वविद्यालय में अंग्रेजी साहित्य के प्रोफेसर थे। वे एकाध वर्ष गुरुदेव के पास रहे। गुरुदेव के ज्येष्ठ पुत्र रथीन्द्रनाथ ने उन्हीं से ही जूडो सीखा। यह बात बहुत से लोग नहीं जानते कि भारत में सबसे पहले गुरुदेव ने ही जूडो को शान्तिनिकेतन में शुरू किया था। प्रो० सानो ने अपने बेंगाल-प्रवास में बंगला-भाषा पर

Scanned with CamScanner

अधिकार पाया और जापान वापस जाने के बाद गुरुदेव का लम्बा उपन्यास 'गोरा' का जापानी में अनुवाद किया, जो आज अनोखी पुस्तक के रूप में मूल्यवान है। 1905 में भिक्षु एकाइ कावागुचि (1866-1945) संस्कृत पढ़ने के लिए एक महीना शान्तिनिकेतन में रहे। उस समय जापान के कई सुप्रसिद्ध चित्रकार ताइकन योकोयामा, कंजन शिमोमुरा, श्युंसो हिशिदा, श्योकिन काटसुदा और कंपो आराइ आदि भी गुरुदेव के निमंत्रण पर कलकत्ता के कला-स्कूल में आये थे। श्री अवनीन्द्रनाथ और श्री नन्दलाल बसु जापानी चित्रकला की तकनीक से काफी प्रभावित हुए और जापानी शिल्पी, भारतीय चित्रकला की शैली से। गुरुदेव के देहावसान के बाद भी यह परम्परागत आदान-प्रदान चलता ही रहा। विश्वभारती के कला भवन में आज भी इन जापानी शिल्पियों की अनेक रचनाएँ सुरक्षित रखी हैं और भारत-जापान के मनोरम सांस्कृतिक संबंधों की शोभा बढ़ा रही हैं।

1921 में गुरुदेव का छोटा-सा स्कूल अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के रूप में विकसित होकर 'विश्व-भारती' बन गया। उस समय एक जापानी बढ़ई श्री किंतारो कासाहारा काष्ठ-विद्या और उद्यान-शास्त्र के गुरु के रूप में कवि द्वारा निमंत्रित किये गये। वे केवल बढ़ईगीरी में ही होशियार नहीं थे, बल्कि सब्जी बनाना, उद्यान बनाने में भी उस्ताद थे। वे अपने हाथ से कई प्रकार की सब्जी बनाकर हमेशा गुरुदेव के पास भेजते रहते थे। इससे गुरुदेव खुश होकर कासाहारा को बहुत प्यार करते थे। गुरुदेव के निवास-घर 'उदयन' में बहुत-से जापानी डिजाइन अपनाये गये हैं, वह सब कासाहारा की ही बनावट है। उस मकान के पीछे एक तालाब को केन्द्रित करके एक सुन्दर जापानी बगीचा बनाया गया है, वह भी उनकी योजना थी। इस प्रकार शान्ति-निकेतन के कवि-निवास में मुख्यतः जापानी छाप दिखाई देती है, वह सब कासाहारा की ही देन है। कासाहारा विद्वान तो नहीं थे, पर एक स्वाभिमानी पुरुष थे, कर्मयोगी थे। उन्होंने अपने व्यावहारिक आचरण से केवल गुरुदेव को ही प्रभावित नहीं किया, बल्कि सारे शान्तिनिकेतन को हिलाया भी। उनके बारे में अनेक किंवदन्ती प्रचलित हैं जो आज भी उनकी याद ताजा करती हैं। एक समय उन्होंने श्रीनिकेतन के अपने घर के नजदीक एक पीपल के पेड़ के ऊपर छोटा-सा घर बनाकर गुरुदेव को आमंत्रित किया था, जो 'कवि का नीड़' कहलाता था। उस समय कोनो नामक दूसरा बढ़ई भी कलकत्ता से आया था, जो कासाहारा का सहयोगी रहा। वह कासाहारा के निर्देश पर कई प्रकार के फर्नीचर बनाया करता था जो आज भी गुरुदेव-कक्ष की शोभा बढ़ा रहे हैं। कासाहारा ने अपने पीछे दो लड़कियों को छोड़ कर शान्तिनिकेतन में ही अपना जीवन समर्पित कर दिया। उनकी एक बेटी अभी भी शान्तिनिकेतन में जीवित है।

1925 से 1929 तक कला भवन में श्री देंजिरो हासेगावा नामक एक जापानी छात्र पढ़ता था। उसने अपने अध्ययन के अवकाश में कई बार हिमालय तथा तिब्बत की यात्रा की थी और कई फोटो लेकर इस पर फिल्म भी बनायी। उसकी मेहनत का फल उसके देहान्त के बाद पुस्तकीय रूप में प्रकाशित हुआ, जो 'हिमालय-यात्रा' के नाम से प्रसिद्ध है।

1929 में कवि ने अपनी अन्तिम जापानी-यात्रा के समय दो जापानी उस्तादों को शान्तिनिकेतन में आमंत्रित करने का निश्चय किया था। एक प्रो० मिन्जो ताकागाकि (1899-1977) जो जूडो मास्टर थे और दूसरी, श्रीमती माकिको हाशिमोतो (1906-1979) जो 'इकेबाना' और 'चानोयु' (Tea ceremony) की उस्तानी।

जूडो-गुरु ताकागाकि 1929 में शान्तिनिकेतन में आये और आश्रम के लड़के-लड़कियों को जूडो सिखाया। किन्तु तब आज के जैसी जूडो-चटाई नहीं थी। धान का पुआल फर्श पर बिछा कर उसके ऊपर कालीन

Scanned with CamScanner

फैलाया जाता। इस प्रकार की कई कठिनाइयों तथा असुविधाओं के बावजूद सभी लोग ईमानदारी से सीखे। शान्तिनिकेतन का सिंह-सदन एक अच्छा जूडो-अड्डा बन गया था। जब गुरुदेव कलकत्ता जाकर अपने नृत्य-नाटय का प्रदर्शन किया करते थे, तब उसी मंच पर जापानी जूडो का प्रदर्शन भी होता था। कवि की दृष्टि से जूडो भी एक कला थी, जो देखने में सुन्दर तथा कोमल थी। किन्तु कवि का विश्व भारती उस समय काफी आर्थिक कठिनाइयों से गुजर रहा था। इच्छा होते हुए भी गुरुदेव प्रो० ताकागाकि को दो साल से अधिक अपने पास रखने में असमर्थ थे। उनकी इच्छा थी कि इतनी अच्छी विद्या का कलकत्ता में भी क्यों प्रचार न किया जाय ? अतः तत्कालीन महापौर श्री सुभाषचन्द्र बसु को पत्र लिखकर प्रो० ताकागाकि को अपने हाथ में लेने की सिफारिश की थी। अफसोस की बात है कि उस समय कलकत्ता में कोई भी जूडो के महत्त्व को समझ न सका। आखिर प्रो० ताकागाकि शान्तिनिकेतन से विदा होकर जूडो-प्रचार के लिए नेपाल तथा अफगानिस्तान की ओर चले गये, जहाँ से उनकी अन्तर्राष्ट्रीय जूडो-यात्रा शुरू होती है। खेद है कि आज शान्ति-निकेतन में जूडो का नामोनिशान भी नहीं है जबकि सारा भारत जूडो-कराते के पीछे पागल हो गया है।

कवि फूल-फलों के प्रेमी थे। उन्होंने अपने शान्तिनिकेतन को फूल और फलदार पेड़ों से भर दिया था मानो आश्रम के एक-एक पेड़ में हम 'इकेबाना' या 'बोंसाइ' के रूप को देख रहे हैं। पर कवि की इच्छा थी कि इस प्राकृतिक सुन्दरता को प्रकृति की गोद से अपने कक्ष में लाया जाय। इसी उचित पद्धति को कवि ने अपनी जापान-यात्रा में देखा था जिसने उन्हें सबसे अधिक प्रभावित भी किया। उन्होंने तत्कालीन शरणगत भारतीय क्रान्तिकारी श्री रसबिहारी बसु (1886-1945) से निवेदन करके एक ऐसे व्यक्ति को शान्तिनिकेतन भेजने के लिए कहा जो वहाँ 'इकेबाना' और 'चानोयु' का परिचय दे सके। अतः श्री बसु की जापानी पत्नी की भतीजी माकिको को ही चुना गया। वह 1930 से 4 वर्ष गुरुदेव के पास रही।

1931 में भिक्षु त्सूश्यो ब्योदो संस्कृत तथा एशियायी विद्या का अध्ययन करने आये। उसके बाद प्रसिद्ध चित्रकार श्री कोसेत्यु नोजु (1885-1973) सारनाथ के जापानी बौद्ध मन्दिर का भित्तिचित्र पूरा करने के पहले भारतीय भित्तिचित्रकला सीखने के लिए कला-भवन में आकर काफी दिन रहे।

अक्टूबर 1935 में श्रीमती तोमि कोरा कवि से मिलने शान्तिनिकेतन आयीं। कवि उस समय 74 वर्ष के हो गये थे। बहुत दिनों के बाद दोनों मिलकर गद्गद् हो गये। क्योंकि कोरा अपने विद्यार्थी-जीवन में कवि की प्रथम जापान-यात्रा के समय कारुइजावा नामक पहाड़ी सैरगाह पर एक पेड़ के नीचे जमीन पर बैठकर कवि का भाषण सुन चुकी थी। कवि की द्वितीय तथा तृतीय यात्रा शुरू हुई तो कोरा उनकी अनुवादक बनी। जिस स्थान पर बैठकर कवि की भाषा सुनी थी, उसी स्थान पर गुरुदेव की एक मूर्ति बन कर तैयार हुई गत वर्ष अगस्त में। श्रीमती कोरा आज 86 वर्ष की हो गई हैं, पर उनके प्रयास से ही 'जापानी टैगोर सोसाइटी' चल रही है।

1939 में एक जापानी नर्तक श्री मिकिओ माकि (1911-1970) ने संगीत भवन में भरती होकर भारतीय नृत्य में जल्दी ही कुशलता प्राप्त कर ली और गुरुदेव के नृत्य-नाट्य के प्रोग्राम में अपनी भूमिका निभायी थी।

इस प्रकार शान्तिनिकेतन में एक ओर कई जापानी पढ़ने-पढ़ाने जापान से आते रहे और चले जाते, सो बात नहीं। दूसरी ओर जब गुरुदेव जापान जाते, तब अवश्य वे अपने प्रसिद्ध विद्वान् या शिल्पी को साथ

Scanned with CamScanner

में ले जाते। बाद में भी कवि शान्तिनिकेतन से कई शिक्षक-विद्यार्थियों को जापान भेजते रहे। इन सब बातों को आज के युग में यदि विचार किया जाय, तो सब कुछ तुच्छ-सा लगता है, किन्तु जब द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्वकाल में साधारणतः प्रवासी छात्र और सांस्कृतिक संबंध अत्यन्त कम था, उसी काल में जबकि भारत और जापान दोनों देशों की नजरें योरोप की ओर थीं, तभी शान्तिनिकेतन और जापान के बीच में इतना आदान-प्रदान का मधुर संबंध होता रहा। यह एक आश्चर्य की बात है।

कवि राष्ट्रवादी और जातिवादी थे। अंग्रेजी सरकार यह आदेश देती थी कि भारतीय अपने बाल-बच्चों को शान्तिनिकेतत में न भेजें। क्योंकि वह मानती थी कि शान्तिनिकेतन उपनिवेश-विरोधी एक केन्द्र है। फिर भी गुरुदेव अपने इस विश्वास पर डटे रहे कि भारतीय कुश्ती और जापानी जूडो अपनी जाति का मनोबल तथा शारीरिक शक्ति को बढ़ाने का एक उत्तम साधन है। ऐसी परिस्थिति में जापान से एक जूडो मास्टर बुलाना कितना साहस का काम था! आज यह विश्वास और साहस शान्तिनिकेतन में नहीं है।

1958 से विश्वभारती में जापानी अध्ययन का केन्द्र खोला गया और बौद्ध धर्म के अनुसंधान के साथ जापानी संस्कृति और भाषा की पढ़ाई शुरू हुई। आज तक जापान से 4 जापानी अध्यापक आकर काम कर गये हैं। शान्तिनिकेतन केवल भारतीय संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण स्थान ही नहीं, बल्कि विश्व संस्कृति का नीड़ भी है। बौद्ध धर्म द्वारा ही भारत और जापान का संबंध एक-दूसरे के निकट आये और यही सांस्कृतिक संबंध गुरुदेव के हाथ से फिर पुनर्जीवित हुए। शान्तिनिकेतन ऐसे सांस्कृतिक संबंधों का प्रतीक और संगम-स्थान है। हम विश्वभारती में भारतीय अध्ययन द्वारा जापान को जान सकते हैं और जापानी अध्ययन द्वारा भारत को सच्चे रूप में देख और समझ सकते हैं।

भारतीय भोजन व संगीत की दुकान

आ सू न

भारतीय वातावरण में आपका स्वागत है

Open : Mon–Fri 16 : 00–01 : 00
Sat–Sun 14 : 00–01 : 00
Sunday रात 8 बजे से भारतीय संगीत सभा

26-2, Kitazawa 3-Chome, Setagaya-ku, TOKYO,
Tel 03–465–7653

Scanned with CamScanner

फिल्मोत्सव 82

तामाकि मात्सुओका

1. फिल्मोत्सव में पहला प्रवेश

बहुत दिनों पहले से मेरा एक सपना था—फिल्मोत्सव में हाज़िर होने का। मैं सात साल पहले से हर साल भारत आती रही हूँ। साल में एक बार, दिसम्बर अथवा जनवरी में आती हूँ, तो कभी मद्रास में, कभी दिल्ली में फिल्मोत्सव के समय पर ही ठहरती थी।

दो-तीन साल पहले मुझे पता चला कि फिल्मोत्सव में "भारती पैनोरमा" नाम का एक प्रोग्राम है और उसमें भारत की हाल की अच्छी फिल्में एक साथ दिखाई जाती हैं। हर साल करीब एक माह प्रवास करते-करते मैं बीस या तीस फिल्में देखती थी, पर वे ज्यादातर व्यावसायिक फिल्में थीं। शहर में आर्ट्स फिल्में देखना बहुत मुश्किल था। "अंकुर", "स्पर्श", "चक्र", "आक्रोश" इत्यादि मैं बहुत देखना चाहती थी, लेकिन एक माह के प्रवास में ऐसी फिल्में कहीं पर देखना असम्भव था। इसीलिए मुझे लगता था कि फिल्मोत्सव में हाज़िर होकर "भारतीय पैनोरमा" देखना मेरे लिए सबसे उचित तरीका है।

लेकिन मुझे यह मालूम नहीं था कि फिल्मोत्सव में प्रवेश कैसे करें? सबसे पहले मैंने तोक्यो के भारतीय राजदूतावास से मदद माँगी। एक सज्जन ने मेरी बात सुनने के बाद कहा, "इस साल से फिल्मोत्सव की निर्देशन कॅमिटी, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय से अलग हो गयी है। इसलिए हम आप की मदद नहीं कर सकते। लेकिन आप चाहें तो मैं दो-तीन परिचय पत्र लिख सकता हूँ।" मैंने जापानी राजदूतावास, नई दिल्ली के एक मित्र को भी पत्र भेजा। लेकिन जवाब नहीं मिला।

तभी तो मैंने सोचा कि और कोई उपाय नहीं है, अब सीधे फिल्मोत्सव की निर्देशन कॅमिटी को पत्र लिखूँ। और वैसे ही किया, तो दो-तीन सप्ताह बाद मंजूर करने का जवाब मिला। उस समय की मेरी खुशी कितनी थी, मैं नहीं बता सकती। मैं औपचारिक प्रतिनिधि के रूप में तो नहीं थी, इसलिए खर्चा अपने आप करना पड़ा, फिर भी फिल्मोत्सव में हाज़िर हो पाना मेरे लिए सचमुच बड़ी बात थी। मैं सुश्री बिन्दु बातरा, श्री एम० वी० कृष्णास्वामी, श्री डी० मुखोपाध्याय इत्यादि फिल्मोत्सव की निर्देशन कॅमिटी के सदस्यों की बहुत आभारी हूँ।

Scanned with CamScanner

2. कलकत्ता में फिल्मोत्सव

फिल्मोत्सव 82 तीन विभाग में बाँटा जाता है। एक है विदेशी फिल्मों का विभाग, दूसरा है विदेशी तीन निर्देशकों का विभाग, और तीसरा है "भारतीय पैनोरमा"। विदेशी फिल्मों में से आठ फिल्में जापानी थीं। वे हैं—"Buddhist From China", "Glowing Autumn", "Lady Oscar", "Michiko", "Strangling", "The Incident", "The Yellow Handkerchief" और "Vengeance Is Mine"।

विदेशी तीन निर्देशकों के विभाग में ज्याँ-लुक गोदार, मिकलस यांचो और यिलमाज़ गुने की फिल्में चुनी गई हैं। गोदार के अलावा दो निर्देशकों के नाम मैंने पहली बार सुने हैं। जापान में तो उनके नाम तक परिचित नहीं थे। जापान वापस आने के बाद कानून के फिल्म फेस्टिवल में यिलमाज़ गुने की फिल्म को सर्वोत्तम फिल्म पुरस्कार मिलने का समाचार सुना। सुनकर ऐसा लगा कि भारत का फिल्म जगत जापान से काफ़ी आगे है।

"भारतीय पैनोरमा" में नई फिल्मों के साथ-साथ पुरानी फिल्में भी दिखाई गईं। इस प्रोग्राम में मैंने अट्ठारह नई फिल्में और ग्यारह पुरानी फिल्में देखीं। पुरानी फिल्मों में से अच्छी लगीं—"मल्लेश्वारी" (तमिल), "स्वर्गसीमा" (तेलगू), "स्ट्रीट सिंगर", "आदमी" (हिन्दी) इत्यादि। ऐसी पुरानी फिल्मों के शो सुबह नौ बजे से और बारह बजे से शुरू होते थे, लेकिन सबटाइटल अंग्रेजी में न देने के कारण विदेशी दर्शक हमेशा कम थे। केवल विदेशी प्रतिनिधि ही नहीं, भारतीय प्रतिनिधि भी कम आते थे। कभी-कभी मैं प्रतिनिधियों के स्थान पर अकेली बैठकर देखती रही। बड़ी अफसोस की बात थी।

नई भारतीय फिल्में देखकर ऐसा लगा कि वे सब काफी अच्छी हैं। दो-तीन बेकार फिल्में भी थीं, पर बाकी सब देखने लायक थीं। उनमें से कुछ को चुनकर आलोचना करना चाहती हूँ।

हिन्दी फिल्म "आधारशिला" युवा निर्देशक अशोक अहूजा की पहली फिल्म है। उस फिल्म की कहानी निर्देशक की आत्मकथा जैसी है। यह फिल्म, फिल्म जगत में काम करने वाले युवकों के रहन-सहन को बड़े जीवित रूप में दिखाती है। एक दृश्य में युवा निर्देशक अजय और उसके साथी व्यावसायिक हिन्दी फिल्मों की पैरोडी दिखाते हैं, वही दृश्य बहुत मनोरंजक था। इस फिल्म की मुख्य कहानी अजय की फिल्म "आधार-शिला" बनाने की है। पहले अजय एक पुस्तक "बुनियाद" को लेकर फिल्म बनाने के लिए लेखक के पास जाता है। पहले तो लेखक बहुत महान और उच्च आदमी लगता था, लेकिन समय के साथ-साथ उसका सच्चा रूप निकल आता है। वह रॉइअलटी बढ़ाने के लिए झूठ बोलता है और सीधे "हाँ" नहीं कहता। अजय धीरे-धीरे उत्तेजित हो जाता है और उसके साथ दर्शक भी उत्तेजित हो उठते हैं। अन्त में अजय "बुनियाद" छोड़कर अपनी कहानी पर आधारित फिल्म "आधारशिला" बनाने का फैसला करता है। अजय के साथी भी उसकी बेहद मदद करते हैं। जब "आधारशिला" का स्क्रिप्ट पूरा होकर पर्दे पर उस की शीर्षक लिपि आ गई, तब दर्शक के मन में भी प्रसन्नता हुई होकर उन्होंने तालियाँ बजा दीं। यह एक हृदयग्राही घटना थी। फिल्म समाप्त होने के बाद फिर तालियों की आवाज़ आ गई।

श्याम बेनेगल की "आरोहण" और सत्यजीत राय की "सद्गति" दोनों गाँव की कहानियाँ हैं। "सद्गति" पचास मिनट की लघु फिल्म है लेकिन "शतरंज के खिलाड़ी" से काफी अच्छी फिल्म बन गई।

Scanned with CamScanner

दोनों फिल्मों में ओम पुरी नायक हैं और उनका अभिनय अति उत्तम है। ऐसी फिल्में खासकर गाँव में दिखानी चाहिए।

बंगाली फिल्मों में से "बैसाखी मेघ" सबसे मनोरंजक थी। लेकिन मनोरंजन के अलावा कुछ प्रभाव नहीं दे सकी।

"चालचित्र" मृणाल सेन की नई फिल्म है और कलकत्ता शहर के आम लोगों के दैनिक जीवन की समस्याओं का सक्रिय रूप में चित्रण करती है। इस फिल्म के दृश्यों में एक लय है, चंचल है।

इस फिल्म के विपरीत, "दखल" बहुत गम्भीर समस्या उठाती है। यह फिल्म एक महिला आँधी का अपनी जमीन रक्षा करने का संघर्ष दिखाती है। आँधी चलवासी जाति की है और चलवासी लोगों के जीवन भी पर्दे पर दिखाये जाते हैं।

"ईमाणी नींगयेम" (मेरा प्यारा बच्चा) विरल मणिपुरी फिल्म है। यह फिल्म रंगीन नहीं है और इसका तेकनीक कमजोर है। अभिनेता-अभिनेत्रियाँ भी बिलकुल व्यवसायी नहीं लगते। फिर भी इस फिल्म में एक आकर्षण है जो फिल्म के अन्त तक दर्शकों की नजरों को पर्दे से नहीं हटने देता। यह फिल्म अन्य भारतीय फिल्मों से अलग है, आम फिल्मों का चौखटा नहीं लगा सकता। ये इस फिल्म के आकर्षण के कारण है। शायद निर्देशक ने सोच-समझ कर ऐसा नहीं किया, मणिपुर के लोगों के रहने और सोचने के ढंग पर आधारित होकर फिल्म बनाते-बनाते ऐसी ही हो गई। इसलिए यह व्यावसायिक फिल्म नहीं लगती, मणिपुर के जीवन के वृत्त-चित्र-सी लगती है।

दक्षिण भारत की फिल्मों में से तमिल फिल्म "थन्नीर थन्नीर" (पानी-पानी) सबसे अच्छी लगी। इस फिल्म में पूरी जीवन-शक्ति और राजनीतिक दृष्टिकोण भी है। यह फिल्म एक गाँव की कहानी है जहाँ कुआँ, चश्मा, नदी नहीं। एक चश्मा तो है लेकिन बहुत दूर। गाँव के लोग एक परदेसी की मदद से किसी-न-किसी प्रकार से पानी लाने के लिए खूब कोशिश करते हैं। लेकिन गाँव का ज़मींदार, जो शहर में रहता है उन लोगों की कोशिश का सामना करता है। क्योंकि गाँव के लोगों ने चुनाव के समय जमींदार के पक्षी के प्रत्याशी को वोट नहीं दिया। अन्त में जब गाँव के सब लोग मिलकर नहर बनाते हैं, तब सरकार उन्हें रोकती है और गिरफ्तार करती है। सरकार का कहना है कि वहाँ की जमीन सरकार की है और उस पर नहर बनाने की योजना अब सरकार के पास नहीं है, इसलिए वह गैरकानूनी काम है। इस फिल्म में निर्देशक आजकल के भारत की सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों की पूरी आलोचना करते हैं। संवाद भी व्यंग्यात्मक और हास्यकर हैं। ऐसी फिल्म देखकर मनोरंजक और कलात्मक दोनों संतोष मिलते हैं।

मलयालम फिल्म "ओप्पोल" (दीदी) भी बड़ी सुन्दर फिल्म है। अभिनेत्री मेनका की सुन्दरता, बाल कलाकार का स्वाभाविक अभिनय इस फिल्म का गुण है।

बाकी फिल्मों में से दो अंग्रेजी फिल्में भी थीं। अपर्णा सेन के निर्देशन की पहली फिल्म "36 चौरंगी लेन" को मनीला के फिल्म फेस्टिवल में गोल्डन ईगल पुरस्कार मिला। इस फिल्म की नायिका जेनिफर कपूर का अभिनय सचमुच सर्वोत्तम है। पर कहानी मामूली है और निर्देशन में भी कोई नयापन नहीं है। सिर्फ एक दृश्य आँखों के सामने से नहीं हटता जो बड़े दिन के समय 'साइलेन्ट नाइट' के गाने के साथ कलकता शहर के दृश्य दिखाती है। बड़ा सुन्दर और दुखभरा दृश्य था।

Scanned with CamScanner

दूसरी अंग्रेजी फिल्म विक्टर बनर्जी की "अॅ ऑगस्त रिक्वाइअम" है और यह एकदम बेकार फिल्म है। विक्टर बनर्जी के अभिनय की क्षमता मैंने "शतरंज के खिलाड़ी" में देखी। वे श्याम बेनेगल की "आरोहण" में भी और सत्यजीत राय की "पिकू" में भी अच्छा अभिनय दिखाते हैं। लेकिन शायद अभिनय की क्षमता और निर्देशन की क्षमता अलग चीज़ है, उनके निर्देशन में कोई प्रभाव नहीं मिला। कहानी भी विदेशी फिल्म की नकल जैसी लगी।

बापू की फिल्म "थ्यागय्या" भी निराशाजनक थी। एकदम "शंकरभरणम" की नकल है।

"उमराव जान" के बारे में देखने से पहले बहुत-कुछ सुना है। एक महिला मैनेजर इस फिल्म के प्रचार के लिए फिल्मोत्सव में आई और काफ़ी ज़ोर से सब लोगों से इस फिल्म की बात करती रहीं। उन्होंने कहा, "इस फिल्म की कहानी बहुत हृदयग्राही है। रेखा का अभिनय देखने वाली चीज़ है। फिल्म में इस्तेमाल किए गए गहने सब असली हैं और निर्देशक मुज़फ्फ़र अली जवान और खूबसूरत हैं। अगर आप चाहें तो उनसे मिलाऊँगी।" वगैरह, वगैरह।

श्री मुज़फ्फ़र अली से तो मैं नहीं मिली, शायद वे खूबसूरत भी होंगे, लेकिन उनका निर्देशन सुन्दर नहीं लगा। नायिका रेखा ने व्यावसायिक फिल्मों में अनेक बार तवायफ़ का पात्र निभाया। वैसे फिल्मों में उनका अभिनय काफ़ी कामोत्तेजक और आकर्षक है। खासकर नाचते-गाते समय के अभिनय की कुशलता सबसे आगे है। "उमराव जान" में रेखा अपने आपको आर्ट्स फिल्म की अभिनेत्री दिखाने के लिए दबाव भरा अभिनय करती रही, और इसके कारण उनका आकर्षण भी कम हो गया। रेखा के अभिनय की क्षमता ऐसे निर्देशन में नहीं आएगी और नसीरुद्दीन शाह भी इस फिल्म में तो कोई प्रभाव नहीं दे सके। शानदार फिल्म होते हुए भी यह मूल्यहीन फिल्म थी।

"कलयुग", "बरा", "पोक्कुवेयिल" इत्यादि नहीं देख सकी।

"बरा" एम० एस० सथ्यू की सबसे हाल की फिल्म है। यह फिल्म फिल्मोत्सव के नौवें दिन दिखाने जाने वाली थी, लेकिन शो के कुछ घंटे पहले पता चला कि यह फिल्म कस्टम क्लिअरन्स के लिए अब भी दिल्ली में है, इसलिए "बरा" की जगह पर "थ्यागय्या" दिखाई जाएगी। थियटर में दर्शक पूरे जमा होने के बाद यह सूचना दी गई। दर्शकों में से ज्यादातर लोग नौजवान थे और उन्हें बड़ा गुस्सा आया। गुस्से से वे लोग शोर मचाने लगे, "हमें 'थ्यागय्या' नहीं चाहिए, 'बरा' चाहिए"। थियटर के मालिक आकर उन्हें समझाने लगे। मालिक ने वादा किया कि टिकट के पैसे वापस कर देंगे और बाद में "बरा" का शो हो तो उन्हें पूर्वाधिकार से दिखा देंगे। पर दर्शकों ने नहीं माना। फिल्मोत्सव के निर्देशक श्री कृष्णास्वामी बुलाये गये और वे दर्शकों के सामने खड़े होकर समझाने लगे। उस समय तक दर्शकों की माँग बढ़ गई थी कि "बरा" की जगह पर सत्यजीत राय की "पिकू" या "सद्गति" दिखा दें। लेकिन उस समय फिल्मोत्सव के निर्देशक के पास ये दोनों फिल्में नहीं थीं। यह जवाब सुनकर युवा दर्शक और ज़ोर से चिल्लाने लगे। अन्त में पुलिस को आकर हस्तक्षेप करना पड़ा। इसी वजह से इसी दिन और अगले दिन के "भारतीय पैनोरमा" के सब प्रोग्राम बन्द हो गये। बड़ी कष्टप्रद घटना थी।

3. अनमोल मुलाकात

फिल्मोत्सव के बीच में अनेक लोगों से भी मिली। उनमें से कुछ लोग इतने मेहरबान थे कि थोड़ी देर के लिए इन्टरव्यू भी करवा दिया। उनमें से हैं—फिल्मोत्सव की निर्देशन कॅमिटी के सदस्य श्री डी० मुखोपाध्याय,

Scanned with CamScanner

पूने के फिल्म आकाइव के श्री पी० के० नायर, मशहूर अभिनेता श्री अमोल पालेकर, उनकी पत्नी व अभिनेत्री श्रीमती चित्रा पालेकर, और महान निर्देशक श्री श्याम बेनेगल। मैं उन लोगों की बहुत आभारी रहूँगी।

श्री और श्रीमती पालेकर ने अपनी फिल्म "आक्रीत" के बारे में बात की। और उसी दिन शाम को मैंने "आक्रीत" देखी। "आक्रीत" काफ़ी अच्छी फिल्म तो है, और दोनों पालेकर के अभिनय खूब हैं। वे दोनों इन्टरव्यू के समय काफी शांतिमय आदमी लगते थे, पर पर्दे पर तो एकदम दूसरे पात्र बन जाते हैं। इस फिल्म में सब लोग अपने पूरी शक्ति से अभिनय करते हैं, इसलिए फिल्म बड़ी जोरदार बन गई। लेकिन फिल्म के हर एक दृश्य ज़ोरदार होने के कारण दर्शकों को बड़े तनाव में देखना पड़ता है और देखते-देखते थक जाते हैं और खून-भरी कहानी, अंधविश्वास के भयानक दृश्यों में फिल्म का विषय खोजना बड़ा मुश्किल काम है।

सबसे अन्तिम, सबसे लम्बी मुलाकात श्री श्याम बेनेगल से हुई। बहुत दिनों से मैं उनसे मिलना चाहती थी, इसलिए न्यू एम्पैया सिनेमा में उन्हें देखकर बिना हिचक के मैं बात करने लगी। मैंने उनसे इन्टरव्यू करने की प्रार्थना की, तो उन्होंने खुशी से हाँ कर दिया।

उनसे मिलने से पहले मुझे लगता था कि श्री बेनेगल शायद बहुत गम्भीर और सख्त आदमी होंगे। इसलिए बातचीत करने में थोड़ा डर लगता था। लेकिन वे बिलकुल ऐसे आदमी नहीं थे। वे एकदम बड़े मन के सीधे-साधे आदमी हैं। वे भारतीय लोगों में ही नहीं, विदेशी लोगों में भी लोकप्रिय हैं। फिल्मोत्सव में वे चलते हैं तो अनेक लोग "हैलो, श्याम !" कहकर सादर नमस्ते करते हैं।

मैंने उनसे पन्द्रह-बीस मिनट तक इन्टरव्यू किया। उन्होंने अपनी हाल की फिल्में "कलयुग" और "आरोहण" के बारे में बताया और अन्त में आजकल की भारतीय फिल्मों के बारे में अपना विचार प्रकट किया।

"हम यह कहना चाहते हैं कि नयी किस्म की फिल्म में एन्टटेनमेन्ट का अन्डरस्टन्डिग भी चाहिए। अभी हमारे जो फिल्म बनाने वाले हैं, डिरेक्टर वगैरह, उनको भी यह समझना चाहिए कि अपना एक ट्रडिशॅन है, और इस ट्रडिशॅन में कोई खराबी नहीं है, और नव रस की जरूरत है। हम वेस्टर्न किस्म के लोग नहीं हैं। साइकलॉजिकली यह ज़रूरी होता है कि नव रस किस्म की चीज़ चाहिए, जिसमें टॉटलिटी हो, एन्टटेनमेन्ट की टॉटलिटी, इक्सपिअरिअन्स की टॉटलिटी हो। हमारे नये फिल्म मेकर्स को यह समझना चाहिए।

सिर्फ वेस्टर्न ढंग से सोचने से यह बात नहीं होगी कि हम अपने ऑड्यन्स को समझने की कोशिश करें। क्योंकि हमारे ऑड्यन्स काफ़ी लोग अनपढ़ हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि वे लोग बुद्धू हैं। वे बहुत समझदार हैं और सॅफिसटिकेटिड भी हैं। हमारे पुराने ढंग के लोग समझते हैं कि हमारे ऑड्यन्स लोग बुद्धू हैं। और नये ढंग के जो फिल्म बनाने वाले लोग हैं, वे समझते हैं कि उनको एड्यूकेट किया जाए। एड्यूकेशॅन की कोई ज़रूरत नहीं है, उनको समझने की ज़रूरत है।

हम लोगों को, हम जो फिल्म बनाते हैं, यह समझना चाहिए कि अपना ट्रडिशॅनल रिस्पॉस भी है फिल्म; तो कोई भी आर्ट है। यह रिस्पॉसिबल ख्याल में रखते हुए पिक्चर अगर हम डिवेलॅप करें तो हम शायद एक नया ट्रडिशॅन भी डिवेलॅप कर सकेंगे।

श्री श्याम बेनेगल की बातें मुझे बहुत पसन्द आईं। इस इन्टरव्यू के बाद उनकी फिल्म "आरोहण"

Scanned with CamScanner

देखी। देखकर मन भर गया। उनकी पुरानी फिल्म "भूमिका" इस अक्टूबर में जापान में आयोजित "Japan Foundation Film Festival—A Panorama of South Asian Films—" में दिखाने जाने वाली है। उस फेस्टिवल में "भूमिका" के अलावा बुद्धदेव दास गुप्त की "नीम अन्नपूर्ण" (बंगाली) और अरविन्दन की "कुमत्ती" (मलयालम) भी दिखाई जाएगी। इस अक्तूबर में तोक्यो में फिर श्री श्याम बेनेगल से अनमोल मुलाकात होगी। मैं उत्सुकता से प्रतीक्षा करती हूँ।

फिल्म लिस्ट (सब कलकत्ता में)

1982. 1. 4	New Empire	किस्मत
	,,	OPPOL (Malayalam)
1. 5	,,	SABAPATHY (Tamil)
	,,	36 CHAWRANGHEE LANE (English)
	,,	CHAALCHITRA (Bengali)
	,,	BAISAKHI MEGH (Bengali)
1. 6	,,	MALLESWARI (Telgu)
	,,	RAMASHASTRI (Marathi)
	,,	IMAGI NINGATHEM (Manipuri)
	,,	AKRIET (Marathi)
1. 7	,,	आदमी
	,,	स्ट्रीट सिंगर
	ROXY	एक ही भूल
1. 8	New Empire	SANT TUKARAM (Marathi)
	,,	AN AUGUST REQUIEM (English)
	,,	AAJ-KAL-PARASHUR GALPA (Bengali)
1. 9	,,	THYAGAYYA (Telgu)
	,,	NENJATHAI KILLATHE (Tamil)
1. 10	Menoka	BILLA (Tamil)
	New Empire	BAISHEY SHRAVANA (Bengali)
	,,	आधारशिला
1. 11	,,	SWARGASEEMA (Telgu)
	,,	JALSAGHAR (Bengali)
	,,	उमराव जान
	,,	DAKHAL (Bengali)
1. 12	,,	चक्र
1. 13	Gorky Sadan	ELIPPATHYAM (Malayalam)
	Jyoti	एक दूजे के लिए
1. 14	Sisir Manch	आरोहण
	New Empire	PIKOO (Bengali)
	,,	सद्गति
	,,	THANEER THANEER (Tamil)

Scanned with CamScanner

कहानी

चौराहे के बीच

तोमिओ मिजोकामि

"वीरेंद्र, क्या तुम सचमुच नहीं जानते कि सम्राट् अशोक कौन थे ? तुम कैसे भारतीय हो जिसने भारत के ऐसे प्रसिद्ध राजा का नाम भी नहीं सुना ! क्या तुम्हारे माँ-बाप ने तुम्हें कभी यह नाम नहीं बताया ?"

वह हमारी इतिहास की कक्षा थी। एक अमरीकी अध्यापक मिस्टर स्मिथ के मुँह से जब मैंने भर्त्सना भरा यह प्रश्न सुना था तो मुझे जीवन में पहली बार बड़ा धक्का लगा था। वास्तव में सम्राट् अशोक का नाम मुझे नहीं मालूम था। इस बात को लेकर अध्यापक ने मुझे मेरे माँ-बाप के साथ बहुत लज्जित किया था। 'अशोक' का नाम ही क्या, मैं तो 'राम' और 'कृष्ण' के नाम तक से भी परिचित नहीं था। "तुम कैसे भारतीय हो !"—अध्यापक के ये शब्द मेरे कानों में बार-बार तीर की तरह चुभते रहे।

यद्यपि मैं सदा से ही भारतीय हूँ पर न सिर्फ मैंने कभी अपने को विशेष रूप से 'भारतीय' महसूस किया था बल्कि इसकी कभी जरूरत ही न हुई थी। इस स्थिति का कारण यह नहीं कि मेरी माँ जापानी हैं बल्कि इसलिये कि हमारे उस अन्तर्राष्ट्रीय स्कूल में, जहाँ मैं पढ़ता था, कोई भी छात्र अपनी राष्ट्रीयता की ओर सजग न था। स्कूल के आदर्श ने ही राष्ट्रीयता के आधार पर हम छात्रों में आपसी भेदभाव करने को कभी प्रोत्साहित नहीं किया था।

बात पाँच साल पहले की है। तब मैं जापान के कोबे शहर में स्थित अन्तर्राष्ट्रीय स्कूल की आठवीं कक्षा में पढ़ता था। इस स्कूल में शहर और उसके आसपास में रहने वाले विभिन्न प्रवासी विदेशियों के बच्चे पढ़ने आते हैं। परन्तु इनमें जापानी बच्चों की संख्या बहुत कम है, क्योंकि उनके लिये जापानी स्कूलों में अधिक सुविधाएँ हैं। कोबे का यह अन्तर्राष्ट्रीय स्कूल अमरीकी शिक्षा-पद्धति के अनुसार अंग्रेजी माध्यम में चलाया जाता है, लेकिन जापानी भाषा एक ऐच्छिक विषय के रूप में अवश्य रखी जाती है। कक्षा में और कक्षा के बाहर हम सब अंग्रेजी में ही बोलते थे। अमरीकी हो, चीनी हो या भारतीय, यहाँ कोई भेदभाव नहीं था। सबके साथ 'भाईचारा' ही हमारे इस स्कूल की विशेषता थी जिसका हम सबको हमेशा से गर्व था। लेकिन

Scanned with CamScanner

नव-नियुक्त इतिहास के उन्हीं अमरीकी अध्यापक ने पहली बार राष्ट्रीयता का नाम लेकर मेरा घोर अपमान किया था।

मिस्टर स्मिथ शिकागो विश्वविद्यालय से भारतीय इतिहास में एम० ए० करके आये थे और उन्होंने मद्रास विश्वविद्यालय में शोध-कार्य भी किया था। वे तमिल भाषा में निपुण थे और उनको हिन्दी भी आती थी। वे भारत-प्रेमी थे। भारतीय इतिहास, विशेष रूप से प्राचीन भारतीय इतिहास, में उनका गहरा ज्ञान था। स्कूल के पाठ्यक्रम में भारतीय इतिहास, अमरीकी इतिहास, चीनी इतिहास आदि ये सब अलग-अलग विषय न हो करके एक ही विषय—'विश्व का इतिहास'—में सम्मिलित हैं। मिस्टर स्मिथ हमें यही 'विश्व का इतिहास' पढ़ाते थे। परन्तु पाठ्य पुस्तक में जहाँ कहीं भी भारत से सम्बन्धित प्रसंग आ जाता तो वे उसी पर ज़ोर दे-देकर बोलते थे और आवश्यकता से अधिक विस्तार से उसका व्याख्यान करते थे। हमें यह सब बहुत बोर लगता था। इसीलिये वे हम छात्रों में लोकप्रिय नहीं थे, भले ही वे बहुत मेहनत तथा जोश के साथ पढ़ाते थे। हमें उनसे यह शिकायत थी कि उनका पढ़ाने का ढंग संतुलित नहीं है। कई छात्रों ने यहाँ तक कहा था कि वे केवल अपना ज्ञान हमें दर्शा रहे हैं—बस ! उनको यूनिवर्सिटी में पढ़ाना चाहिये था। शुरू-शुरू में मेरी समझ में नहीं आया था कि उन्होंने किस इरादे से मुझे डांटा है। बाद में पता चला कि उनके विचार में हरेक भारतीय को विशेष रूप से भारतीय इतिहास और सस्कृति से परिचित होना चाहिये और उनकी दृष्टि में मैं पूर्णरूप से एक भारतीय था।

मेरे बारे में उनकी धारणा बहुत कुछ सही भी थी। मैं 19 वर्षीय वर्णसंकर भारतीय हूं। मेरे पिताजी पंजाबी हैं। उनका नाम राजेन्द्र खन्ना है और मेरी माँ का नाम मारीको खन्ना है। पिताजी द्वितीय महायुद्ध में फौजी थे। उन्होंने सिंगापुर में जापानी सेना के अत्याचार देखे थे इसलिये प्रारम्भ में उनके मन में जापान के प्रति घृणा की भावना का उत्पन्न होना स्वाभाविक था। जब द्वितीय महायुद्ध समाप्त हुआ तब वे 'ऑक्यूपेशन् आर्मी' में भरती होकर जापान आये। तबसे धीरे-धीरे उनके मनसे जापान के प्रति घृणा की भावना दूर होती गई। अब वे जापानियों के गुणों को भी पहचानने लगे थे और जब कोबे में मेरी माँ के साथ उनकी प्रथम भेंट हुई और वे दोनों प्रेम-बंधन में हमेशा के लिए बंधे तब से जापान के प्रति उनकी द्वेष-भावना पूर्णरूप से प्रशंसा में बदल गई। उन्होंने न केवल मेरी माँ से प्रेम किया अपितु जापान की हरेक चीज से प्रेम किया। शादी के बाद पिताजी सेना छोड़के मशीन और कपड़े के आयात-निर्यात के काम में जुट गये। तब तक जापान भी स्वतंत्र हो चुका था। उन्होंने दिन-रात बहुत परिश्रम किया। जापान की तरक्की के साथ-साथ उनके व्यापार ने भी तरक्की की और अब वे कोबे शहर के सबसे सफल एवं संपन्न प्रवासी भारतीयों में से एक हैं। उन्होने कभी जापान में रहकर जापानी नागरिक बनने का फैसला किया था परन्तु राष्ट्रीयता के संबंध में जापान का कठोर कानून हमेशा उनके आड़े आया। चालीस साल से वे जापान में ही रह रहे हैं। उन्हें जापानी भाषा बोलने का अच्छा अभ्यास हो गया है और सबसे बड़ी बात यह है कि उनको जापान से गहरा प्रेम है, फिर भी न तो जापानी सरकार ने उनको अपने देश की राष्ट्रीयता प्रदान की न वह करेगी ही। यह कानून सभी विदेशी 'पुरुषों' के लिए लागू है। मेरी माँ भारत की राष्ट्रीयता ले सकती थी पर जापान में रहने के लिये इसका कोई फायदा नहीं, इसलिये माँ की राष्ट्रीयता जापानी ही बनी रही। बच्चों की राष्ट्रीयता पिता की राष्ट्रीयता के अनुकूल होती हैं, इसलिये मैं जापान में पैदा होकर भी हमेशा के लिये भारतीय हूं। हाँ, मेरी छोटी बहन अगर जापानी लड़के के साथ शादी करेगी तब उसे जापान की राष्ट्रीयता मिल सकती है।

खैर, माँ-बाप की शादी के बहुत वर्ष के बाद मेरा जन्म हुआ था, इसलिये मैंने उनका विशेष प्रेम पाया। इस संपन्न परिवार में मेरा पालन-पोषण सुख-शांति से हुआ। उन्होंने मुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं

Scanned with CamScanner

होने दिया। छोटी बहन से भी मेरा बहुत स्नेह था। स्कूल में सभी सहपाठियों से मेरी अच्छी बनती थी। पड़ोस के जापानी बच्चों के साथ भी मेरी दोस्ती थी। पिता से पुरुषार्थ, माँ से कोमलता; पिता से सुन्दर आकृति, माँ से गोरा रंग; पिता से बर्ताव का खुलापन, माँ से शांत स्वभाव: तथा पिता से विनोद-प्रियता, माँ से गंभीरता—यह सब मुझे संस्कारगत रूप में मिला है। व्यक्तित्व के इन्हीं गुणों के कारण मुझे सब ने हमेशा पसंद किया। ट्राम या बस में प्राय: मैंने लड़कियों को अपनी ओर ताकते हुए महसूस किया था। मुझे देखकर कुछ लड़कियाँ तो खुले आम कहती थीं—"वाह ! कितना सुन्दर लड़का है !" मेरे माँ-बाप अपने इस योग्य पुत्र का परिचय दूसरों से बड़े गर्व के साथ कराते थे।

घर में हम लोग जापानी तथा अंग्रेजी दोनों भाषाएँ बोलते हैं—माँ के साथ ज्यादातर जापानी में और पिता के साथ अंग्रेजी में। माँ को टूटी-फूटी अंग्रेजी आती है लेकिन पिता धारा प्रवाह से जापानी बोल सकते हैं। हाँ, उनको जापानी भाषा का अक्षर-ज्ञान नहीं है, क्योंकि उन्होंने कभी इसकी विधिवत शिक्षा नहीं पाई थी। मेरी हालत भी यही थी। मैंने कक्षा में थोड़ी बहुत जापानी लिपि सीखी अवश्य थी परन्तु उसे अच्छी तरह से पढ़ना-लिखना कभी नहीं सीखा, इसलिये पिता के साथ स्कूल-सम्बन्धी किसी भी प्रसंग को छेड़ने के लिये मुझे हमेशा अंग्रेजी का ही सहारा लेना पड़ता रहा है। पिताजी अपने भारतीय मित्र-मंडल में हिन्दी अथवा पंजाबी में बात करते थे पर घर में न जाने क्यों हमारे साथ कभी इन भाषाओं में नहीं बोले। परिणामत: मैं हिन्दी या पंजाबी सीख ही न पाया। माँ-बाप ने मुझ पर कभी किसी तरह का दबाव नहीं डाला। उनकी यह 'उदारता' केवल भाषा तक ही सीमित नहीं थी बल्कि सांस्कृतिक क्षेत्र में भी थी। हम लोगों ने घर में कभी कोई जापानी उत्सव मनाया हो—मेरी स्मृति में तो नहीं आता। आसपास के जापानी बच्चे 'नव वर्ष' 'बाल दिवस' 'गुड़िया उत्सव' आदि धूमधाम से मनाते थे पर हमारे घर में यह सब कभी नहीं हुआ। माँ ने न कभी इन त्योहारों के बारे में मुझे बताया न जापानी बच्चों की कहानियाँ सुनाईं। जापानी संस्कृति से वंचित होने पर भी मेरे जापानी समाज में अस्वीकृत न होने का एकमात्र कारण मेरा सभ्य व्यवहार था जो माँ की देखा-देखी मैंने सीखा था। पिताजी ने भी कभी घर में 'होली' 'दशहरा' 'दीवाली' 'राखी' इत्यादि त्योहार नहीं मनाये जिसके कारण मैं भारतीय संस्कृति से भी पूरी तरह वंचित रहा। माँ-बाप सदा से बहुत व्यस्त रहे सुबह से रात तक दफ्तर में काम करते। पिताजी का व्यापार बढ़ते रहने के साथ-साथ माँ को भी उनकी मदद करनी पड़ी थी। त्योहार और मेरी शिक्षा के बारे में माँ-बाप दोनों अन्योन्याश्रित थे—माँ के मन में यह विश्वास था कि पिताजी मुझे संभाल लेंगे और पिताजी के मन में यह कि माँ सब कुछ करेंगी। ऐसी हालत में 'अशोक' 'राम' 'कृष्ण' 'राजकुमार शोतोकु' 'तोकुगावा इएयासु' आदि नामों से अनभिज्ञ होना स्वाभाविक था।

मिस्टर स्मिथ से पहली बार अपने व्यक्तित्व के इस अधूरेपन की भर्त्सना सहकर मैंने अपनी तरफ से भारतीय इतिहास तथा संस्कृति के बारे में जानकारी प्राप्त करने की बहुत कोशिश की। कई किताबें पढ़ीं पर पृष्ठभूमि के अभाव के कारण यह सब बहुत कठिन लगा। एक पुस्तक में लिखा है—'अशोक मौर्य-राजाओं में सबसे अधिक प्रसिद्ध था। उसका भारतवर्ष में हुए महानतम शासकों में प्रमुख स्थान है।'—पर 'मौर्य' क्या चीज है ? महानतम शासकों में अशोक का प्रमुख स्थान क्यों है ? एक के बाद एक प्रश्न मेरे दिमाग को कचोटने लगे। स्कूल के अन्य विषयों की तैयारी करने में यह सब बाधक बना। गणित, विज्ञान आदि की कक्षाओं का अनुसरण करना कोई आसान काम नहीं था। दूसरी ओर मिस्टर स्मिथ के पास जाने की मेरी हिम्मत भी नहीं थी।

एक दिन पिताजी कोबे के 'इण्डिया-क्लब' में 'गणतंत्र-दिवस' के उपलक्ष्य में हुई पार्टी में शामिल होने के लिये मुझे ले गये। वहाँ सैकड़ों व्यक्ति उपस्थित थे। प्रवासी भारतीयों के साथ जापानी अतिथि भी

Scanned with CamScanner

काफी संख्या में आमन्त्रित थे। पिताजी लोगों से हँस-हँसकर बात करते रहे और [illegible] तभी से वहीं मेरा परिचय ओसाका विदेशी भाषा विश्वविद्यालय के एक अध्यापक और कुछ छात्रों से कराया गया जो भारतीय भाषाओं का अध्ययन-अध्यापन कर रहे थे। वे सब हिन्दी में ही बोलने लगे। मेरे यह कहने पर कि मुझे हिन्दी नहीं आती, अध्यापक ने अंग्रेजी में बोलना शुरू किया परन्तु उनमें से एक विद्यार्थी अजीब-सा मुँह बनाकर हिन्दी में ही कहने लगा—"आप कैसे भारतीय हैं जो हिन्दी भी नहीं जानते !" इसके बाद उसने क्या-क्या कहा, मेरी समझ में नहीं आया। लेकिन उसके मुख से निकले शब्दों—'आप कैसे भारतीय हैं !' ने एक बार फिर तीन साल पहले मिस्टर स्मिथ से खायी चोट को ताजा कर दिया। पर मेरी इस पीड़ा को कौन समझेगा ? तब से मैं अपने आत्मविश्वास को खो बैठा हूँ। कई बार सोचा कि हिन्दी सीखूं पर सोचते-सोचते रह गया। मेरी ही 'हीन ग्रंथि' ने मेरे दिल को जकड़े रखा।

इस घटना को बीते दो साल हो चुके हैं। मैंने उस अन्तर्राष्ट्रीय स्कूल को किसी तरह से पास कर लिया है। लगभग मेरे सभी सहपाठी अब किसी न किसी विश्वविद्यालय में प्रवेश ले चुके हैं परन्तु मैं कुछ नहीं कर पा रहा हूँ। मैं दिशाहीन हूँ। मुझे न तो जापान के किसी विश्वविद्यालय में प्रवेश मिलेगा न भारत के किसी विश्वविद्यालय में। कई बार सोचा कि पिताजी के व्यापार में हाथ बटाऊँ पर इसका साहस नहीं, भले ही पिताजी भविष्य में मुझसे ऐसा ही चाहेंगे। परन्तु मेरे जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि मै तन से भारतीय हूँ पर मन से कहीं का नहीं। इसलिये आज मैं चौराहे के बीच खड़ा हूँ। खड़ा रहूँगा—जाने कब तक..... .....।

हमारे प्रकाशन

एशियाई आधुनिक साहित्य माला

भारत : "अपना मोर्चा" काशीनाथ सिंह
अनुवादक : शिगेओ आराकि

इन्दोनेशिया : "अनन्त रास्ता" मोताफल लुबिस
अनुवादक : नोरिआकि ओशिकावा

ताइवान : "सायोनारा फिर मिलेंगे" ह्वान चुन मिन
अनुवादक : तानाका व फुकुदा

मनिला : "चमकता नाखुन" एडगर्ड लैएस
अनुवादक : मोतोए तेरामि

एशियाई आधुनिक साहित्य का अनुवाद एवं प्रकाशन

MEKONG CO., LTD

25-1, Hongo 1-Chome, Bunyko-ku, TOKYO, JAPAN

Scanned with CamScanner

ममता कालिया की कहानियों में मध्यवर्गीय नारी का चित्रण

एदेरा कोदामा

हमने इस समय तक ममता कालिया की कुछ कहानियाँ और उपन्यास पढ़े हैं। हमें यह कह डालने का हिम्मत नहीं है कि इन कहानियों और उपन्यासों के सूक्ष्म हिस्सों तक हम अच्छी तरह समझ सके लेकिन जितनी हमारी समझ में आ सका उतनी ही चीजों के बारे में बताना आवश्यक है। इस लेख में भारत की मध्यवर्गीय नारी के जीवन और उसकी भावना आधुनिक जापान की मामूली नारी के जीवन और भावना की तुलना में देखा जायेगा। इसके लिये हम नारी के जीवन को तीन भाग में बाँटकर विचार करेंगे। पहले जन्म और बचपन फिर जवानी, अंत में विवाह के बाद।

मध्यवर्गीय परिवार में अगर बच्ची का जन्म हो तो इसकी परिवार के सदस्यों पर क्या प्रतिक्रिया होगी। निश्चित रूप से यह नहीं कह सकते हैं कि यह बच्ची को हार्दिक स्वागत मिलेगा। भारी दहेज की प्रथा के कारण बहुत-सी चिन्ताओं के कारण, आखिर लड़की दूसरे की हो जाने वाली है इसके कारण परिवार के लोग मन ही मन बच्ची को बड़ा बोझ समझते है। यह "प्रेम कहानी" पृ० 28 पर स्पष्ट देख सकते हैं। जन्म से लड़की विशेष कर पिता और बड़े भाई पर बड़ी जिम्मेदारी महसूस कराती है। हमें याद आ जाती है "दो जरूरी चेहरे" के भाई और मैं की ! उल्टा लड़की को जन्म से लगातार परिवार के प्रति चौकन्नी रहना पड़ता है। उसके ऊपर जो कर्तव्य अपेक्षित है उसके अनुसार जीने के लिये अपने-आप को दबाना पड़ता है।

जापान में पैदा लड़का हो या लड़की, यह कोई फिक्र की बात नहीं। लेकिन अधिकांश महिलाएँ बीसवीं की उम्र के अंदर विवाहित हो जाती है इसलिये जापान में भी लड़कियाँ सुखी व्याह के लिये सुरक्षित रखने की चिंता माँ-बाप को देती है। पर माता-पिता लड़की के जन्म को बुरा तो बिलकुल नहीं मानते।

अब बचपन के बारे में जिक्र करेंगे। भारत में लड़के और लड़कियाँ आरामदेह और मुफ्त तरीके से पालन किये जाते हैं। उदाहरण के लिये भारत के बच्चों को जापान के बच्चों की तरह शतरंजी नहीं पहनायी जाती है। उन्हें मूत्र त्याग के समय बेचैनी और कष्ट के अनुभव करने की आवश्यकता नहीं है। यह बात बच्चों पर बड़े होने में कैसा प्रभाव डालती होगी ? एक ओर यह है कि बच्चों ने असुविधा के बहुत कम अनुभब किये

Scanned with CamScanner

हैं इसलिये अपने पर नियंत्रण रखने में कम योग्यता उन्हें मिलेगी। दूसरी ओर यह है कि आखिर शैशव बात है सब बच्चे अपने आप शौचघर जाना सीख लेते हैं। शैशव में बड़ों का शासन न होने से बच्चों स्वैच्छिक और प्रत्यक्ष स्वभाव प्रगट हो जाता है। इन दोनों में से कौन-सा रूप ठीक होगा, यह हम यहाँ निश्च नहीं कर सकते।

परन्तु बचपन के बाद भारतीय लड़कों और लड़कियों को अचानक शुद्ध-अशुद्ध का प्रत्यय सिख दिया जाता है। फ़िर दोनों को आपस में छूना मना किया जाता है। लड़की अगर किसी तरह का भी स्प लड़के से करती हो—एक खत से भी—तो उसकी बड़ी बदनामी होता है। यह बात ममता कालिया के उपन्या में जहाँ-तहाँ दिखायी देती है। दोनों का ऐसा कड़ा विभाजन लड़कियों के लिये लड़कों के प्रति कार्ल्पनि अभिलाषा का कारण हो जाता है। जैसे कि "प्रेम कहानी" में यशा।

फिर अपने भाई और माता-पिता से हमेशा की तरह पर्यवेक्षण किया जाने के कारण लड़की स्व भी उनका ख्याल रखती है। वह न चाहते हुए भी बराबर उनकी ओर सचेतन रहती है।

यह स्थिति विवाह के बाद और खराब हो जाती है। पत्नी अपने पति और पति के परिवार क सब कुछ दे देती है। वह उनसे सावधान रहती है, उनकी आज्ञाकारी होती है। वह कभी अपनी इच्छा स्पष्ट नहीं कर सकती है। वह एक नौकरानी हो जाती है। लड़कियों को यह मानने को कहा जाता होगा कि अप पति देवता होता है। पत्नी है नौकरानी। यह "राइवाली" में साफ़ दिखायी देता है। पत्नी का नाम ससुराल वालों से बदला जाता है। इसका मतलब यह है कि इस लड़की का व्यक्तित्व संपूर्ण रूप से उपेक्षित है। जरा सोचिये तो समझ सकते हैं कि किसी का नाम बुरा अर्थ लगाकर पुकारना या किसी के ऊपर गंदा नाम रखना उस व्यक्ति के सारे अस्तित्व को बिगाड़ने या विकृत करने से बराबर है। नाम आदमी के अस्तित्व से घनिष्ठ रूप से संबद्ध होता है। पर पत्नी का नाम बड़ी आसानी से बदल दिया जाता है। यह बात नारी के व्यक्तित्व पर बड़ी हानि अवश्य पहुँचाती है।

मेरा अनुमान है "सीट नंबर छह" की नायिका उच्चवर्ग की नारी होगी। वह पढ़ी-लिखी औरत है और अपने आप को दूसरी औरतों से अलग समझती है। हमें वह घमंडी-सी लगती है। परन्तु 'एक अदद औरत" में देखिये नायिका घर के लोगों के व्यवहार के अनुसार यंत्रवत् चलती है। वह अपने पति के हर कार्य से सुखी-दुखी हो जाती है। उसका कोई वजूद नहीं, वह इसे स्वयं जानती भी है।

परन्तु इन बातों से यह कहना गलत है कि नारी में अहंभाव नहीं है। "आज़ादी" में हम देख सकते है कि बहू और सास परस्पर इतना विरोध करती है मानों वे कुत्ता और बंदर हों। जापान में इतना खुला झगड़ा तो नहीं होगा, पर बहू-सास का संबंध जापान में भी अच्छा नहीं है। बशर्ते कि जापान में बहुत-सी बहू सास के साथ रहना नापसंद करती है इसलिये जगड़ा भी कम होता है।

जो हो, उस घटना ने हम लोगों को आतंकित किया जिसमें सास और ननद ने बहू को तेल से जला दिया था। हम विश्वास नहीं कर सकते थे। भारतीय कितने भी हिंसक स्वभाव के हों, वे और हम मनुष्य हैं। क्या अंतर होगा। इसमें जरूर कुछ न कुछ कारण है। क्या यह गुस्सा के कारण है जो बाहर नहीं निकल सकता है? "लड़के"।

Scanned with CamScanner

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार लाचारी और आत्मविश्वास की हीनता आगे बढ़कर आक्रमणशीलता हो जाती है और मनुष्य के लिये सबसे बुरा, सबसे हानिकर यह है कि उसकी योग्यता को पूर्णतया बढ़ाने से रोकना। बिना अंतराल की निरर्थकता, निराशा का अनुभव, बाहर न किया जाता क्रोध इसी के कारण हुआ करता है। क्रोध अगर अपने आप पर उतारे या दूसरों के प्रति, वह दुःखद घटना को पहुँचाता है।

लेकिन यह बात जाति-व्यवस्था की समस्या और भारत की आर्थिक स्थिति आदि से भी संबद्ध है इसलिये हम इसके बारे में बताना यहाँ छोड़ना उचित समझते हैं।

अब विवाह के बारे में। जापान में विवाह लड़की की चाह से आधारित है। उसकी माँ-बाप का मनोरथ भी इस निर्णय पर असर देता है। पर सबसे ज्यादा अधिकार लड़की के हाथ में है। भारत में इससे बिलकुल दूसरा हाल है। निर्णय माँ-बाप करते हैं और चुनाव की शर्त पति का व्यक्तित्व नहीं बल्कि उसकी जाति, स्वास्थ्य, संपत्ति आदि हैं। लड़के के माँ-बाप भी लड़की को उसकी सुन्दरता, रंग, जाति आदि से चुनते हैं। विवाह के बाद लड़की का जीवन सिर्फ घर पर ही बिताया जाता है। किसी से भी मन से वह बातचीत नहीं कर सकती है। कितना अकेला जीवन ! जापान में भी अकेली पत्नी बहुत है। पति काम करके लौटते हैं पर उनसे नहीं बोलते हैं, वह घर पर ही रहती है उसके पास बताने की कोई बात नहीं है। परन्तु जापान में नारी समाज में निकल सकती है। वह इन्वाइरेन्तल पोलूशन के प्रति आंदोलन कर सकती है, अंशकालिक काम कर सकती है, मन बहलाने के लिये टेनिस क्लब में जा सकती है। यह सब भारत की मध्यवर्गीय नारी को मुश्किल होगा। लेकिन जीवन में खोखलापन दोनों देशों की घर की पत्नियों को समान है। यह भावना व्यस्त काम के बीच में आती है—जैसे कि "बातचीत बेकार है" में। लेकिन उसकी तरह अपने मन के अंदर की बात पर स्वयं दे सकने वाली नारी भारत में संख्या में बहुत नहीं होंगी।

कहानियाँ पढ़ते समय हमें यह बात निश्चित करना मुश्किल लगता है कि यह किस वर्ग के लोग की कहानी है या यह भारत के किस भाग में, कैसी परिस्थिति में हुई घटना है। कहानी में लिखी हुई दृश्य को हृदय की आँखों से सजीव देखना चाहिये। लेकिन जो चीजें या परिस्थितियाँ या मनुष्य जापान में नहीं होते उन्हें मन में बनाना मुश्किल है। उन कहानियों को हम समझ सकते हैं जिनमें भारत की चीजों का वर्णन कम होता है और व्यक्तियों के मन की बातें ही लिखी हुई है। ऐसी ही कहानियाँ ममता कालिया ने ज्यादा लिखी है।

कुमारी कोदामा, ओसाका विदेशी भाषा विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग में चतुर्थ वर्ष की छात्रा है।

Scanned with CamScanner

"प्रेम कहानी"

माकोतो फुजिवारा

मैंने ममता कालिया जी की "प्रेम कहानी" के पहले कोई आधुनिक हिन्दी उपन्यास नहीं पढ़ा था इसलिये पन्ना उलटते समय मैं अजनबी बातों से आश्चर्य करता रहा। मैं सोच बैठा था कि भारतीय उपन्यास के अधिकांश हिस्से में धर्म या जाति का वर्णन किया जाता है लेकिन वह जल्दी में गलत निकल गया। ऐसा वर्णन कहीं भी नहीं आया। इसके बदले में मुझे उन दृश्यों को देखना पड़ा जो मैंने हिन्दी उपन्यास में कोई प्रत्याशा न की थी। एक तो यह है कि पात्र किस्से में अंग्रेजी बहुत बोलते हैं। हाँ, जापान हैं भी अंग्रेजी से इतना प्रभावित है कि हर रोज दूरदर्शन या सूचना-पट्ट में बहुत से अंग्रेजी शब्द आते हैं पर जापानी आपस में तो कभी अंग्रेजी में नहीं बोलते। इसलिये यह उपन्यास पढ़ते हुए कभी-कभी मुझे ऐसा लगा मानों अब मैं हिन्दी उपन्यास नहीं, अंग्रेजी उपन्यास पढ़ रहा हूँ। इतना ही नहीं, बीच में रूसी उपन्यासकार ताल्सताय के नाम को भी आते देखकर फिर आश्चर्य हुआ। दूसरे, भारतीय मध्यवर्ग का प्रदाय है। हम विदेशी पता नहीं क्यों भारत को केवल पंडितों का और गरीबों का पुराना देश समझना पसन्द करते हैं पर यह बिलकुल गलत है। मैं भी भारतीय मध्यवर्गीय जीवन के बारे में बहुत अधिक नहीं जानता था इसलिये अच्छा ही हुआ कि यह उपन्यास पढ़कर मुझे उस जीवन के बारे में बहुत से पता चले।

मध्यवर्गीय जीवन में पति और पत्नी के कार्य और कर्तव्य साफ-साफ बँट जाते हैं। पति बाहर जाकर किसी कंपनी में काम करता है और उसके लिये पर्याप्त वेतन पाता है। उधर पत्नी तो अगर कालेज में गयी थी तो भी उसे घर के अंदर खाना बनाने, कपड़ा धोने या सफाई करने जैसे छोटे-मोटे काम ही करने पड़ते हैं। दिन में पति हमेशा नौकरी से जुटते हुए व्यस्त होता है और उसके पास कोई खाली समय नहीं है। जब पति घर वापस लौट आता तो वह इतना थक चुकता कि उसे पत्नी से बातचीत करके समय बिताने में बड़ी तकलीफ होती। जया और गिनेस का दाम्पत्य जीवन भी इससे अपवादिक नहीं था—इसके बावजूद कि उन दोनों ने स्वयं ही इश्क लड़ा कर शादी की और शायद गिनेस अब भी जया के प्रति प्रेम कर रहा हो।

यह उपन्यास पढ़ कर मुझे सबसे बड़ा अचंभा यह पढ़कर हुआ कि अंकल जया के कूल्हे और जांघ छूने के लिये बिस्तर में घुस आया जबकि आंटी एकदम पास नींद से सो रही है। यह पढ़कर मुझे बहुत अश्लील लगा और एक साथ मेरा मन खराब हो गया। क्योंकि ऐसी बात जापान में कभी नहीं हो सकता। जया के

Scanned with CamScanner

मां-बाप ने अंकल को सहज ही विश्वास कर लिया था इसलिये मां-बाप से अलग होकर अंकल के यहाँ जया रहने लगी थी। मुझे लगता है कि अंकल के दिमाग में रिश्तेदार की जिम्मेदारी का नाम व निशान तक नहीं है। पर यह उपन्यास यह बात नहीं मालूम होने देता कि इस आदमी की जिम्मेदारी की कमी किससे उत्पन्न हुई है।

सर्वतः मैंने यह उपन्यास पढ़ने में बड़ा मजा लिया। खास तौर पर मुझे उस समय का हिस्सा अच्छा लगा जब गिनेस और जया अभी नहीं शादी करते। वे दोनों बहुत सीधे और भोले लगे पर व्याह के बाद गिनेस तुरंत घमंडी और ठंडा निकल गया। सच कहूँ तो मैंने यह उपन्यास इस तरह पढ़ा था कि जो उन दोनों के बीच पैदा हुआ वह प्रेम शादी से होकर कैसा बदलेगा। पढ़ चुक कर मुझे ऐसा लगा कि उनके मानसिक प्रेम करके छोटे-मोटे काम, नौकरी आदि के सामने धीरे-धीरे गीली मिट्टी का लोंदा हो गया।

मैंने पिछले साल चार-पांच हिन्दी उपन्यास और कई कहानियाँ भी पढ़ी थीं। मैं जल्दी से पढ़ने और सब किस्सा पाने का आदी हो गया लेकिन मुझे इस बात की चिन्ता भी है कि मैं उन उपन्यासों के किस तक का मुख्य उद्देश्य समझ सकता हूँ क्योंकि मैं भारतीय आचार-विचार या हिन्दी के एक-एक शब्द का महत्व अभी बहुत नहीं जानता। मैं इस वसंत की भारतीय यात्रा में इन बातों का भी अध्ययन करना चाहता हूँ।

श्री फुजिवारा ओसाका विदेशी भाषा विश्वविद्यालय में हिन्दी तृतीय वर्ष के छात्र हैं।

भारतीय भोजनालय

दन-रन

2-16-1 Kichijoj honmachi
Musashino-shi, TOKYO
Tel (0422) 22-5333

Scanned with CamScanner

आपका पत्र

"ज्वालामुखी" का दूसरा अंक मिला। मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देती हूँ। यह पत्रिका बहु ज्ञानप्रद और रुचिकर है। क्या प्रशन्सनीय है आपका परिश्रम।

Prof. Dr. Horstman
Rheinisch Fiedrich-Wilhelm
Universitat, E. R. G.

●

मेरे एक अभिन्न दोस्त के पास आज ही "ज्वालामुखी" प्रति आई। वह मैं पूरा पढ़ गया। बड़ा मजा आया इसे पढ़ते वक्त·····चूँकि आप ने जो भी साहित्य दिया है अपनी ओर से·····वह बड़ा ही दुर्लभ और भारतीय लेखकों के लिए लाभान्वित है। "एक रिक्शे वाले की कहानी" तोमियो मिज़ोकामि द्वारा लिखित कहानी भारतीय सोच के धरातल पर काफी सुन्दर बन पड़ी।

सुरंजन (लेखक)

●

आपकी भेजी पत्रिका "ज्वालामुखी" यथासमय मिल गई थी। ज्ञात हुआ कि यह सम्भवत: पत्रिका का दूसरा अंक है। दुर्भाग्य से पहला अंक मुझे नहीं मिल पाया था। "धर्मयुग" के पिछले अंक में हम लोगों ने उसकी समीक्षा छापी है।

डा० धरमवीर भारती
सम्पादक "धर्मयुग"

●

यहाँ से हिममंडित पर्वत श्रेणियाँ जब स्पष्ट दिखाई देती हैं।
आपके "ज्वालामुखी" को देखकर कुछ कमी का अनुभव करता हूँ।

वाचस्पति
हिन्दी प्रवक्ता
राजकीय महाविद्यालय
जयहरिकात

Scanned with CamScanner

"ज्वालामुखी" में सब ही स्तरीय लेख हैं। और जापान व भारत को एक सूत्र में साहित्यिक रूप से बांधने का प्रयास है। रिक्शे वाले की सत्य कथा स्मरणीय रहेगी।

वीरेन्द्र जैन पहाड़ वाले
सम्पादक "अन्तर्ज्वाला"
बिजनौर

●

जापानी भाइयों के विचार, दर्शन तथा संस्कृति और हिन्दी प्रेम को इंगित करने वाला "ज्वालामुखी" का सितम्बर 1981 का अंक मिला, धन्यवाद।

इस प्रकार का प्रगतिशील प्रयास जापान एवं भारत से साहित्य को एक दूसरे से शब्दों के माध्यम से अवगत करायेगा।

एस. एन. भार्गव
सम्पादक "प्रतिबिम्ब"

●

"ज्वालामुखी" का अंक मिला, धन्यवाद।

यह देखकर सचमुच बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप लोग हिन्दी में इतना काम कर रहे हैं।

यही कामना है कि आप लोगों के माध्यम से दोनों देशों में सांस्कृतिक सम्बन्ध विकास पाए।

डा. प्रेम शंकर
हिन्दी विभागाध्यक्ष
सागर विश्वविद्यालय

●

"ज्वालामुखी" में प्रकाशित रचनाएँ, भाषा, विचार और स्तर की दृष्टि से उच्चकोटि की हैं। सभी रचनाकारों को मेरी समस्त हार्दिक बधाइयाँ व तमाम शुभकामनाएं। "ज्वालामुखी" के दूसरे अंक में श्री आकिरा ताकाहाशि ने मेरे कथा साहित्य पर अपना समीक्षात्मक लेख प्रस्तुत किया है। मुझे यह जानकर बहुत खुशी हुई है कि श्री ताकाहाशि को मेरी कहानियाँ अच्छी लगती हैं और उन्होंने गहराई से मुझे पढ़ा है।

मिथिलेश्वर (लेखक)

●

मुझे नहीं पता था कि जापान से भी हिन्दी में पत्रिका निकलती है।

आपके इस सफल प्रयास पर बधाई। मुझे यह नहीं पता था कि जापान में हिन्दी विषय पर इतना ध्यान दिया जा रहा है।

डा. मोहन कान्त गौतम
University of Leiden
Netherlands

●

Scanned with CamScanner

"ज्वालामुखी" का एक अंक यहाँ देखने को मिला, जिज्ञासा उठ खड़ी हुई सुखद आश्चर्य हुआ कि आप और आपके साथी जापान से यह हिन्दी पत्रिका सम्पादित प्रकाशित कर रहे हैं और रचनाएँ भी यहीं से वहाँ से जुटा लेते हैं।

राजेन्द्रप्रसाद सिंह
सम्पादक "आइना"

●

आपकी बहुत सुन्दर "ज्वालामुखी" नामक पत्रिका मिल कर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। बहुत अच्छी बात है कि जापान के हिन्दी जानने वाले विद्वानों और लेखकों की अपनी पत्रिका है। पत्रिका का जो अंक आपने मुझे भेजा, उसमें मेरे लिए कई लाभदायक लेख थे। मुझे बहुत खुशी है कि आपने मुझे "ज्वालामुखी" का दूसरा अंक दिया। बहुत धन्यवाद।

डा. रिचर्ड बार्ज
Australian National University

●

आपके द्वारा कृपापूर्ण प्रेषित "ज्वालामुखी" पत्रिका के सितम्बर 1981 तथा 1980 के अंक पाकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। अनेक धन्यवाद। आपके पत्र के माध्यम से दो संस्कृतियों में परस्पर परिचय हो रहा है इससे विचार की नयी दिशा प्राप्त हो सकेगी।

डा. आनन्दप्रकाश दीक्षित
हिन्दी विभाग अध्यक्ष
पुणे विद्यापीठ

●

मैं आपको मेरा हार्दिक धन्यवाद कर रही हूँ। आप से भेजी हुई पत्रिका "ज्वालामुखी" के लिए बड़ी प्रसन्नता की बात है कि जापान में हिन्दी प्रेमियों के लिए ऐसी पत्रिका प्रकाशित है।

प्रो. साजानोव
Mosco University

●

यह "ज्वालामुखी" का सामयिक प्रकाशन अपने आप में अनोखा प्रयास है।

नागर्जुन (कवि)

●

"ज्वालामुखी" की प्रति मिली। साधार धन्यवाद।

हिन्दी के प्रति लगन और जिज्ञासा तथा भारतीय संस्कृति एवं भाषा के प्रति इस तरह का अनुराग और स्नेह वास्तव में यह आप लोगों की सहृदयता की निशानी है :

निरंजन (कवि)

Scanned with CamScanner

बड़े हर्ष एवं संतोष की बात है कि भारत से सुदूर होने वाले जापान जैसे देश में हमारी राष्ट्र भाषा का अध्ययन, चिंतन एवं मनन होता है। हमारी राष्ट्रभाषा के विश्व प्रचार में आप की पत्रिका का प्रकाशन एक ऐतिहासिक घटना है जो भविष्य में राष्ट्रभाषा विकास के सन्दर्भ में स्वर्णाक्षरों से अंकित होगी।

डा. सुनीलकुमार लपटे
महावीर विद्यापीठ
कोल्हापुर

●

"ज्वालामुखी" के बारे में दो-तीन पत्रों में पढ़ा।

पढ़कर खुशी हुई कि जापान में हिन्दी पत्रिका का एक अंकुर फूटा। दो कारणों से "ज्वालामुखी" को देखने की अभिलाषा एक सम्भवतः इस पत्रिका के माध्यम से विदेशों में हिन्दी की स्थिति पर कुछ प्रकाश पड़ सकेगा, दो, जापान में अब तक हिन्दी में हुई कार्य प्रगति का विवरण परिशिष्ट में प्रकाशित हुआ है। विदेशों में हिन्दी "ज्वालामुखी" के विस्फोट के लिए बधाई स्वीकार करें।

दिलीप पाण्डेय
उप सम्पादक 'प्रगति मंजूषा'

●

आप द्वारा प्रेषित "ज्वालामुखी" पत्रिका मिली।

तदर्थ हार्दिक धन्यवाद। पत्रिका इतनी उपयोगी एवं बाह्य रूप इतना नयनाभिराम लगा कि एक साँस में पूरा पढ़ गया।

डा. कामता कमलेश
हिन्दी विभाग अध्यक्ष
जे० एस० हिन्दू स्नातकोत्तर कालेज

●

"ज्वालामुखी" का प्रथम अंक प्राप्त हुआ। बधाई। हार्दिक धन्यवाद।

पत्रिका का उद्देश्य स्तुत्य है। उद्देश्य में आप सफल हों, यही मेरी मनोकामना है।

डा. शंकर राजू नाइडू
हिन्दी विभाग अध्यक्ष
मद्रास विश्वविद्यालय

Scanned with CamScanner

भारत में दस महीने

चिहिरो ताना

अपनी इच्छानुसार भारत में रहते हुए लगभग दस महीने बीत गए, पर कभी-कभी न जाने क्यों अचानक उदास हो जाती हूँ। जब मैं पहली बार घूमने भारत जाई थी तब मैं वाराणसी में कुछ दिन ठहरी थी। उस समय मैं गंगा देखने घाट जाती थी। गंगा के घाट पर बैठकर सूर्योदय-सूर्यास्त और गंगा में स्नान करने भक्तों को देखती रहती थी। तभी मुझे महसूस होता था कि मेरे दिल में एक अजीब सी शान्ति और संतोष फैल गई है। मुझे आनन्द मिल गया था वह आनन्द माँ की गोद में सुलाए गए बच्चे का आनन्द जैसा था। भारतवर्ष का भ्रमण समाप्त करके जापान वापस आने के बाद मैंने फिर भारत आने की कोशिश की इस बार भारत में रहने के लिए। क्या पढ़ना है, क्या देखना है, क्या करना है, उस का कुछ भी निश्चय नहीं था, सिर्फ भारतवर्ष में रहना चाहती थी। भारत माता यानी भारत की भूमि में रहना चाहती थी। और अब मैं भारत में रहती हूँ। मेरी इच्छा पूरी हो गई, पर कभी-कभी मैं उदास हो जाती हूँ। क्यों न जाने इसलिए मैं आजकल रोज अपने आप से पूछती हूँ कि मैं क्यों उदास हूँ।

सच कहूँ तो जब मैंने भारत में रहने का सपना देखा था वह यात्री के मनोभाव से उत्पन्न हुआ सपना था। यात्री की नजर से देखे भारत और भारत में रहकर देखे भारतीय दैनिक जीवन में कितना अन्तर है। भारत का सामान्य दैनिक जीवन देखना मेरे लिए एक नया ही अनुभव था, जो सामान्य विदेशी यात्री के रूप में मेरी नजर में नहीं आया था। मेरी उदासी शायद इन दोनों के अन्तर से उत्पन्न मानसिक धक्के के कारण होगी। भारत के लोगों के धर्म से गहरा सम्बन्ध भी मेरे लिए नया अनुभव था। जब मैं जापान में रहती थी। तब मैं भगवान या धर्म पर विश्वास नहीं रखती थी। लेकिन भारत में रहकर मैं भगवान पर विश्वास करने लगी। मैं सोचती हूँ कि जापानी लोगों और भारत के लोगों के बीच एक बड़ा फर्क भगवान को मानना या न मानना। समझा जाता है कि जापानियों का धर्म बौद्ध है, लेकिन अधिकांश जापानी सच्चे बौद्ध के बदले पूर्वज आराधक हैं। क्योंकि जापानी लोग भगवान की पूजा नहीं करते, बल्कि मरने वाले को, आत्मा को शान्त करने के लिए पूजा करते हैं। और आजकल पहले से अधिक लोग सिर्फ नाम के लिए ही बौद्ध धर्म मानते हैं। मन से नहीं। मैं भी इस तरह की बौद्ध थी। इसलिए जब भारत के लोग

कुमारी चिहिरो तानाका वर्धा के राष्ट्रीय भाषा विद्यापीठ की छात्रा हैं।

Scanned with CamScanner

मुझ से मेरा धर्म पूछते थे तब मेरे लिए सही जवाब देना मुश्किल हो जाता था। अवश्य जापान में भी भगवान के प्रति गहरा विश्वास रखने वाले भक्त हैं फिर भी बहुत कम। इसलिए भारतीय लोगों को रोज पूजा करते देखकर मुझे आश्चर्य होता था, साथ ही दिन में कम से कम एक बार अपने सुख-दुःख, क्रोध, स्वार्थ-लाभ को भूल कर भगवान के प्रति पूजा करने का भारतीय रीति रिवाज मुझे अच्छा लगने लगा। इस धार्मिक बातावरण में रहकर आनन्द मिलने के साथ-साथ मैं थक भी गई थी। इसलिए उदास भी हो जाती थी, और जापान की याद भी मुझे आती थी।

परन्तु दूसरे देशों में रहकर अर्थात भारत में रहकर अपने देश जापान के परम्परा, संस्कृति, साहित्य और कला आदि को नए सिरे से देखने का मौका भी मिला। इन दस सालों में जापानी लोग उद्योग के विकास के नाम पर प्रकृति को नष्ट कर रहे है। यह मनुष्य का घमंड है। मनुष्य भी प्रकृति का एक अंग है। प्रकृति को सब नष्ट नहीं करना चाहिए। प्रकृति और कृत्रिम जीवन का समन्वय होना चाहिए, नहीं तो जापान का भविष्य अन्धकारमय हो जाएगा।

इस प्रकार भारत में रहकर नए सिरे से अपने देश के बारे में सोचने का वक्त मुझे मिला है यह भी मेरे लिए एक नया अनुभव है।

Scanned with CamScanner

जापानी उपन्यास

"काली वर्षा"

आकिओ ताकामुर

इस वर्ष एक बार फिर 6 अगस्त का दिन आया और हिरोशिमा शहर पर की गई अणुबम बारी की याद ताज़ा कर गया। हर वर्ष इसी दिन अणुबम का शिकार हुए लोगों की आत्माओं की शान्ति के लिए हिरोशिमा में स्थापित शान्ति पार्क में एक भव्य समारोह का आयोजन किया जाता है।

लेकिन यह एक खेदजनक पहलू है कि जापानी लोग विशेषकर युवक-युवतियाँ अणुबम तथा युद्ध के दुःखपूर्ण अनुभवों को भुलाते जा रहे हैं। कहने की आवश्यकता नहीं, हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जापानी सेना ने एशिया में क्या किया था।

इस अवसर पर मुझे जापान के सुप्रसिद्ध लेखक मासुजि इबुसे द्वारा लिखा गया "काली वर्षा" शीर्षक वाला उपन्यास पुनः पढ़ने का ख्याल आया।

इस उपन्यास का प्रकाशन कोई 15 वर्ष पहले किया गया था, जिसकी बहुत से पाठकों ने प्रशंसा की है। मुझे याद है कि मैं भी इस उपन्यास से गहण रूप से प्रभावित हुआ था।

इन दिनों दैनिक समाचार पत्र "आसाहि" पर एक समालोचक द्वारा "काली वर्षा" के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा गया था —

"यह पुस्तक पढ़ने के बाद मुझे साहित्य की असीम शक्ति पर विचार करना पड़ा। इस पुस्तक में लेखक न तो गुस्से से अपने विचार बलपूर्वक व्यक्त करते हैं और न ही किसी व्यक्ति या देश की निन्दा करते हैं। श्री इबुसे केवल शान्तिपूर्ण ढंग से अपने वाक्य बढ़ाते हैं। फिर भी उनके इस उपन्यास में पाठकों से युद्ध और अणुबमों के विरुद्ध अपील करने की शक्ति विद्यमान है।"

"काली वर्षा" शीर्षक वाले इस उपन्यास में मुख्यतः हिरोशिमा में एक रेशा कम्पनी में कार्य संलग्न शिगेमात्सु शिजुमा, उसकी पत्नी सिगेको और उनके साथ रहने वाली भानजी यासुको, इन तीनों व्यक्तियों का

Scanned with CamScanner

उल्लेख किया गया है। शिगेमात्सु अणुबम का शिकार है। इस उपन्यास का अधिकतर भाग शिगेमात्सु तथा यासुको की डायरी का रूप ले लेता है।

"काली वर्षा" का प्रारम्भ इस प्रकार होता है—

"इन कई वर्षों से के० नामक गाँव में वास करने वाले शिगेमात्सु के मन पर अपनी भानजी यासुको की चिन्ता के बादल छाये हुए हैं। शिगेमात्सु यह भी सोचते थे कि पिछले कई वर्षों से उनके मन पर बना हुआ यह बोझ भविष्य में भी दूर नहीं किया जा सकेगा। शिगेमात्सु यासुको की शादी को लेकर चिंतित है। के० गाँव में जो हिरोशिमा शहर से काफी दूर स्थित है, एक ऐसी अफ़वाह सुनने में आयी कि द्वितीय विश्व युद्ध के उत्तरार्ध में यासुको सेना विभाग के अधीन हिरोशिमा शहर के एक माध्यमिक स्कूल में भोजन विभाग में कार्य-संलग्न थी। और 6 अगस्त को वहाँ वह अणुबम का शिकार हो गई। शिगेमात्सु के लिए और भी असहनीय बात यह रही कि कई लोगों के कथनानुसार शिगेमात्सु दम्पति यासुको का यह रहस्य छिपाने का भरसक प्रयास कर रहा है। इसी अफ़वाह के कारण यासुको की शादी अब तक साकार नहीं हो पाई। कई लोग यासुको को किसी अच्छे व्यक्ति के साथ शादी करवाने के लिए आगे तो आते हैं, मगर इस अफ़वाह की वजह से तुरन्त ही शादी के बारे में अपने प्रयास बन्द कर देते हैं।"

कहा जाता है कि सन् 1945 के अन्त तक हिरोशिमा में डेढ़ लाख व्यक्ति मृत्यु का शिकार हुए थे। 6 अगस्त को हिरोशिमा में स्थिति नरक के समान थी। जले हुए असंख्य शव, यहाँ वहाँ दिखाई देते थे। उनके चेहरे इतनी बुरी तरह से जल गए थे कि यह तक पहचानना मुश्किल था कि वे नर हैं या नारियाँ। कुछ लोगों के सर पर एक भी बाल न बचा था। सौभाग्यवश अगर वे बच भी गए तो भी परमाणु विस्फोट से फैली भयानक रेडियो धर्मता के कारण उन लोगों को दीर्घकाल तक शारीरिक यातनाएँ झेलनी पड़ी।

उन दिनों कुमारी यासुको हिरोशिमा शहर में माध्यमिक स्कूल में नहीं, बल्कि शहर के परिसर में रेशा कम्पनी के एक कारखाने में काम करती थी। युद्ध समाप्त होने के कोई 5 वर्ष बाद यासुको से शादी के लिए औपचारिक मुलाकात करने का प्रस्ताव रखा गया। लेकिन दोनों के बीच मध्यस्थता की भूमिका निभाने वाले व्यक्ति ने यह अनुरोध किया कि यासुको यह बताए कि वह अणुबम गिरने के दिन कारखाने से घर तक किस रास्ते से लौटी थी। शिगेमात्सु की तरह यासुको भी डायरी लिखने की आदत थी। इसलिए शिगेमात्सु के मन में इस डायरी की 6 अगस्त के आसपास वाले दिनों का विवरण मध्यस्थ को दिखाने का विचार आया।

6 अगस्त को यासुको हिरोशिमा शहर से कुछ दूर एक कस्बे में थी जिस कस्बे में वह अमरीकी सेनाओं के भारी आक्रमणों से परिवार के महत्त्वपूर्ण सामान की रक्षा करने के लिए वहाँ पहुँची थी।

प्रातः सवा आठ बजे.....वह एक घर पर आराम कर रही थी। उस क्षण पर आकाश में एक पीली सी बिजली दौड़ गई। इसके फ़ौरन बाद विस्फोट का भारी धमाका चारों ओर फैल गया। किसी को पता भी न चला कि अचानक यह क्या घट गया है।

यासुको की डायरी में लिखा हुआ है :—

"जब हमने हिरोशिमा शहर की ओर दृष्टि घुमाई, तो अविश्वस्नीय भयंकर दृश्य दिखाई दिया। एक विशाल छाते जैसे आकार का काला बादल दानव की तरह सारे शहर के ऊपर छाया हुआ था।"

Scanned with CamScanner